परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2009
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर बृजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, नौएडा, उत्तर प्रदेश में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

विषय सूची

आलेख

रीना सिंह और पी.के. साहू
उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत अध्यापकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन 1

कमलानंद झा
वर्तमान में समाज विज्ञान-अध्यापन की चुनौतियां 21

बी.के. साहू और रश्मि जैन
कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन 33

कमलेश यादव और गोपाल प्रसाद नायक
दृष्टिबाधित, मूकबधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन 43

शोध टिप्पणी / संवाद

श्वेता अग्रवाल और एन.पी.एस. चन्देल
अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता 53

भरत टाक
शिक्षकों का तकनीकी एवं सांस्कृतिक सशक्तिकरण 67

अमृत पाटले
महिला सशक्तिकरण में सामाजिक सुरक्षा एवं शिक्षा का प्रभाव 73

गोपाल प्रसाद नायक
मूल्यों के विकास में शिक्षण संस्थानों की भूमिका 83

नरेन्द्र कुमार सिंह
शिक्षा में शोध अध्ययनों की गुणवत्ता का आलोचनात्मक अध्ययन 91

राजेश्वर सिंह
वर्तमान परिवेश में उच्च शिक्षा का प्रबंधन 103

हीरालाल बाछोतिया
शिक्षा के क्षेत्र में प्रौढ़ साहित्य का महत्व 109

शारदा कुमारी
पढ़ने की संस्कृति की निरंतरता 113

चिंतक और चिंतन

रश्मि श्रीवास्तव
गिजुभाई बधेका का बच्चों के प्रति न्याय : बाल केन्द्रित शिक्षा की संकल्पना का योगदान 119

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत अध्यापकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन

रीना सिंह* और **पी.के. साहू****

राष्ट्र के विकास में उच्च शिक्षा व्यवस्था महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यह ज्ञान का प्रसार करती है तथा युवाओं को सभी दक्षताओं से परिपूर्ण करती है ताकि वे राष्ट्रीय विकास में अपना सर्वोतम योगदान कर सकें। किसी भी समाज का आधार स्तम्भ शिक्षक ही होता है। उन्हीं के विवेक, कर्त्तव्य परायणता, आदर्शोन्मुखता जैसे गुणों से ही समाज का कायाकल्प हो सकता है। इसके विपरीत जिस समाज में शिक्षक वर्ग उदासीन होकर आलसी हो जाता है वह समाज शीघ्र ही पतनोन्मुख हो जाता है। युवकों के विकास का आधार शिक्षक को मानते हुए यूनेस्को (1994) ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि शिक्षक 21वीं शताब्दी का नेतृत्वकर्त्ता होगा और कल का आधार अर्थात युवाओं को व्यवहारिक तथा सशक्त पहचान देने में उसका प्रभावी योग होगा। शिक्षक अपने अधिगम सम्बन्धी कार्यों को प्रभावी ढंग से तभी पूर्ण कर सकता है जब वह स्वयं का विकास करता है क्योंकि समय व समाज में परिवर्तन के साथ उसकी भूमिका में बदलाव आता रहता है। अत: शिक्षक को शिक्षण दक्षता में परिपूर्ण करने तथा अपने व्यवसाय के प्रति जागरूक करने के लिए यू.जी.सी. द्वारा एकेडमिक स्टॉफ कॉलेज की स्थापना की गयी जिसका उद्देश्य शिक्षकों को विभिन्न शिक्षण दक्षताओं में प्रशिक्षण देना है। शिक्षक को अधिक प्रभावी बनाने में प्रशिक्षण कार्यक्रम की प्रासंगिकता पर पूर्व में कुछ अध्ययन हुए हैं जिनका विवरण निम्न है:

* शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ.प्र.
** विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ.प्र.

राम चन्द्राकर के. और लिलावर, एस. (1997) ने शिक्षक प्रशिक्षण आवश्यकता का अध्ययन किया और पाया कि लक्ष्य आधारित अधिगम, अपने ज्ञान को नवीनतम करते रहना, व्यावसायिक जागरूकता तथा निर्देशन इत्यादि के लिए प्रशिक्षण को शिक्षकों द्वारा आवश्यक माना गया।

जेठी, रेनू और कुमार वी. (1997) ने शिक्षक प्रभावशीलता पर अध्ययन किया कि वे कौन-कौन से कारक हैं जो शिक्षक को प्रभावी बनाते हैं जिसके लिए छात्रों से शिक्षकों का साकलन कराया और पाया कि शिक्षकों का व्यक्तित्व, शिक्षण योजना, शिक्षक-छात्र अन्तर्क्रिया, निर्देशन इत्यादि शिक्षक की अन्य दक्षताओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं।

कुन्डु, सी.एल. (1997) ने एकेडमिक ओरिएंटेशन कार्यक्रम विकास और चुनौतियों पर कार्य किया और पाया कि यदि ओरिएंटेशन के कार्यक्रम में स्व मूल्यांकन, श्रव्य दृश्य उपकरण का प्रयोग, शिक्षण तकनीक इत्यादि को शामिल कर दिया जाए तो इस कार्यक्रम को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त शिक्षक शिक्षण तथा इसकी आवश्यकता पर कुछ अन्य अध्ययन कुजे और अन्य (1989), सन्थाल (1985), सेन्ट्रा (1976), सिंह (1980) डोनाल्ड और पाण्डेय (1977), केली (1979), तथा सिंह और नन्द (1977) ने किया है। उपर्युक्त अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को देखते हुए यह ज्ञात करने की आवश्यकता हुई कि उच्च शिक्षा स्तरीय शिक्षक स्वयं किन क्षेत्रों में अधिक दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता को व्यक्त करते हैं।

उद्देश्य

1. उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत अध्यापकों की लिंग भेद के आधार पर प्रशिक्षण आवश्यकताओं की तुलना करना।
2. उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत अध्यापकों की विषय समूह के आधार पर प्रशिक्षण आवश्यकताओं की तुलना करना।
3. उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत अध्यापकों की अति आवश्यक दक्षता क्षेत्र को ज्ञात करना।

परिकल्पनाएं

इस अध्ययन के लिए निम्न दो परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है:

1. उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की प्रशिक्षण आवश्यकता में अन्तर होता है।
2. उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत सामाजिक तथा मानविकी विषय समूह के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में अन्तर होता है।

अध्ययन विधि

जनसंख्या

प्रस्तुत अध्ययन के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा संघटक महाविद्यालयों में कार्यरत सभी शिक्षक तथा शिक्षिकाओं को अध्ययन की जनसंख्या के रूप में लिया गया है।

न्यादर्श

शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण क्षेत्र को ज्ञात करने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एकेडमिक स्टॉफ कॉलेज में प्रशिक्षित कला संकाय के 120 शिक्षक प्रतिभागियों को लिया गया है जिसमें 60 शिक्षक तथा 60 शिक्षिकायें सम्मिलित की गयी हैं।

उपकरण

अध्ययन के उद्देश्यों की अभिपूर्ति के लिए स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है जिसके लिए 'प्रशिक्षण आवश्यकता मापनी' का निर्माण किया गया है। विभिन्न विद्वानों तथा शिक्षकों से प्राप्त सुझावानुसार इस मापनी में कुल 7 क्षेत्र हैं जो निम्नलिखित हैं:

वैयक्तिक दक्षता, शिक्षक छात्र सम्बंधी दक्षता, कक्षा शिक्षण संबंधी दक्षता, शोध सम्बंधी दक्षता, प्रबंधकीय दक्षता, मूल्यांकन सम्बंधी दक्षता, सामुदायिक विकास सम्बंधी दक्षता। विभिन्न दक्षता क्षेत्र तथा उसमें सम्मिलित कथनों का विवरण निम्नलिखित है:

क्षेत्र संख्या	प्रशिक्षण के लिए दक्षता क्षेत्र	कथन संख्या
1.	वैयक्तिक दक्षता	16
2.	शिक्षक व छात्र सम्बंधी दक्षता	7
3.	कक्षा शिक्षण सम्बन्धित दक्षता	17
4.	शोध सम्बन्धित दक्षता	5
5.	प्रबंधकीय दक्षता	5
6.	मूल्यांकन सम्बन्धित दक्षता	9
7.	सामुदायिक दक्षता	9

प्रयुक्त सांख्यिकी

आंकड़ों के विश्लेषण के लिए काई वर्ग (χ^2) का प्रयोग सार्थकता स्तर को ज्ञात करने के लिए किया गया। इसके अतिरिक्त प्रतिशत विश्लेषण तथा मध्यमान विधि का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों की व्याख्या

उद्देश्य-1 : लिंग भेद के आधार पर शिक्षकों की आवश्यकताओं को ज्ञात करने के लिए χ^2 का प्रयोग किया गया है जो निम्न है:

तालिका-1

वैयक्तिक दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की लिंगवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2x3 सारणी से χ^2 का मूल्य
शिक्षक	31 (51.67)	15 (25)	14 (23.33)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ χ^2 = 1.99
शिक्षिका	27 (45)	23 (38.33)	15 (25)	60	
योग	**58**	**38**	**29**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मूल्य 1.99 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की वैयक्तिक दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है। अत: हम कह सकते हैं कि वैयक्तिक दक्षता में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण को शिक्षक तथा शिक्षिका समान रूप से आवश्यक मानते हैं।

तालिका से स्पष्ट है कि वैयक्तिक क्षेत्र में और अधिक दक्ष बनने के लिए सर्वाधिक 51.67 प्रतिशत शिक्षक और 45 प्रतिशत शिक्षिकायें प्रशिक्षण को आवश्यक मानती हैं।

तालिका-2

छात्रों से उचित सम्बंध विकसित करने के लिए शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की लिंगवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
शिक्षक	23 (38.33)	25 (41.67)	12 (20)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 1.99$
शिक्षिका	16 (26.67)	28 (46.67)	16 (26.67)	60	
योग	**39**	**53**	**28**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मूल्य 1.99 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की छात्रों से उचित सम्बंध विकसित करने हेतु शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि छात्रों से उचित सम्बंध बनाने के लिए शिक्षक तथा शिक्षिका, दोनों ही प्रशिक्षण को समान रूप से आवश्यक समझते हैं।

तालिका-1 से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में दक्ष बनने के लिए 38.33 प्रतिशत शिक्षिका प्रशिक्षण को आवश्यक मानते हैं तथा 20 प्रतिशत अनिश्चितता व्यक्त करते हैं तो ठीक उसी तरह 27 प्रतिशत शिक्षिका प्रशिक्षण को आवश्यक समझती हैं तथा 27 प्रतिशत इसके प्रति अनिश्चित हैं।

तालिका-3

कक्षा शिक्षण दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की लिंगवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
शिक्षक	21 (35)	22 (36.67)	17 (28.33)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$
शिक्षिका	22 (36.67)	23 (38.33)	15 (25)	60	$\chi^2 = 1.99$
योग	**43**	**45**	**32**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मूल्य 1.99 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना-कक्षा शिक्षण दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि कक्षा शिक्षण दक्षता में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण को शिक्षक तथा शिक्षिका दोनों ही समान रूप से महत्व देते हैं।

इस क्षेत्र में प्रशिक्षण आवश्यकता का प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि 35 प्रतिशत शिक्षक तो 37 प्रतिशत शिक्षिकायें कक्षा शिक्षण में दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण को आवश्यक मानती हैं।

तालिका-4

शोध सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की लिंगवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
शिक्षक	37 (61.67)	10 (16.67)	13 (21.67)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 7.35$
शिक्षिका	25 (41.67)	22 (36.67)	17 (28.33)	60	
योग	**62**	**32**	**30**	**120**	

.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मूल्य 7.35 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से अधिक है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक है। इस क्षेत्र के लिए बने शून्य परिकल्पना की शोध सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की प्रशिक्षण आवश्यकतों में सार्थक अन्तर नहीं है, को अस्वीकार किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि शोध सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पर शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के प्रत्यक्षण में अन्तर है।

इस क्षेत्र में प्रशिक्षण आवश्यकता का प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि शोध सम्बंधी क्षेत्र में और अधिक दक्ष होने के लिए 62 प्रतिशत शिक्षक, 42 प्रतिशत शिक्षिकाओं द्वारा प्रशिक्षण को आवश्यक माना गया। प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि शिक्षकों द्वारा शिक्षिकाओं की तुलना में शोध के क्षेत्र में प्रशिक्षण को अधिक आवश्यक माना गया।

तालिका-5 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मूल्य 8.71 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से अधिक है। अत: इस क्षेत्र के

तालिका-5

प्रबंधन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की लिंगवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
शिक्षक	18 (30)	20 (39.33)	22 (36.67)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 8.71$
शिक्षिका	34 (56.67)	13 (21.67)	13 (21.67)	60	
योग	**52**	**33**	**35**	**120**	

.05 स्तर पर सार्थक

लिए χ^2 का मान सार्थक है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की प्रबंधन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की प्रशिक्षण आवश्यकताओं में सार्थक अन्तर नहीं है, को अस्वीकार किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि प्रबंधन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पर शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के प्रत्यक्षण में अन्तर है।

इस क्षेत्र का प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रबंधन के क्षेत्र में और अधिक दक्ष होने के लिए शिक्षक (30%) तो शिक्षिका (57%) प्रशिक्षण को आवश्यक मानते हैं। अत: स्पष्ट है कि प्रबंधन क्षेत्र में शिक्षकों की तुलना में शिक्षिकाओं द्वारा प्रशिक्षण को अधिक आवश्यक माना गया।

तालिका-6 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 10.84 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से अधिक है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की प्रबंधन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की प्रशिक्षण आवश्यकताओं में सार्थक अन्तर नहीं है, को अस्वीकार किया जाता है।

तालिका-6

मूल्यांकन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि हेतु शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की लिंगवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
शिक्षक	23 (5)	24 (38.33)	3 (40)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 10.836$
शिक्षिका	40 (66.67)	18 (30)	12 (20)	60	
योग	**63**	**42**	**15**	**120**	

.05 स्तर पर सार्थक

अत: कहा जा सकता है कि मूल्यांकन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पर शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के प्रत्यक्षण में अन्तर है।

प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि मूल्यांकन सम्बंधी क्षेत्र में दक्ष होने के लिए शिक्षक (38%) तो और शिक्षिकायें (67%) प्रशिक्षण को आवश्यक मानती हैं। स्पष्ट

तालिका-7

उचित सामुदायिक सम्बंध बनाने के लिए शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की लिंगवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
शिक्षक	23 (38.33)	25 (41.67)	12 (20)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 4.32$
शिक्षिका	25 (41.67)	22 (30.67)	13 (21.67)	60	
योग	**48**	**47**	**25**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

है कि शिक्षिकायें शिक्षकों की अपेक्षा मूल्यांकन के क्षेत्र में प्रशिक्षण को अधिक आवश्यक मानती हैं।

तालिका-7 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 4.32 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना कि उचित सामुदायिक सम्बंध बनाने के लिए शिक्षक व शिक्षिकाओं की प्रशिक्षण आवश्यकताओं में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि सामुदायिक सम्बन्ध बनाने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पर दोनों समूह के शिक्षकों की प्रत्यक्षण समान स्तर की है।

तालिका के प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि इस दक्षता क्षेत्र में प्रशिक्षण आवश्यकता पर शिक्षक (38.33%) और शिक्षिका (41.67%) सहमति व्यक्त करते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि इस क्षेत्र में शिक्षिकायें शिक्षकों की अपेक्षा स्वयं को कम दक्ष होना महसूस करती हैं।

उद्देश्य-2: विषय समूह के आधार पर शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं में अन्तर ज्ञात करने के लिए χ^2 का प्रयोग किया गया है जो निम्न हैं:

तालिका-8

वैयक्तिक दक्षता में वृद्धि के लिए सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की विषयवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
सामाजिक विज्ञान	27 (45)	20 (39.33)	13 (21.67)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$
मानविकी	25 (41.67)	15 (25)	20 (39.33)	60	$\chi^2 = 2.14$
योग	**52**	**35**	**33**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-8 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 2.14 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की वैयक्तिक दक्षता में वृद्धि के लिए सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है। अत: कहा जा सकता है कि वैयक्तिक दक्षता में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण को दोनों विषय समूह के शिक्षक समान रूप से आवश्यक मानते हैं।

तालिका के प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामाजिक विषय के सर्वाधिक (45%) शिक्षक तथा मानविकी के भी सर्वाधिक शिक्षक (42%) प्रशिक्षण को वैयक्तिक दक्षता में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता को व्यक्त करते हैं।

तालिका-9

शिक्षक छात्र सम्बंधी दक्षता में वृद्धि हेतु सामाजिक तथा मानविकी के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की विषयवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
सामाजिक विज्ञान	27 (45)	20 (39.33)	13 (21.67)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 2.27$
मानविकी विषय	25 (41.67)	15 (25)	20 (39.33)	60	
योग	**52**	**35**	**33**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-9 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 2.27 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इसके लिए बनी शून्य परिकल्पना कि शिक्षक छात्र सम्बंधी दक्षता में वृद्धि हेतु सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि छात्रों से उचित सम्बंध बनाने के लिए सामाजिक तथा मानविकी के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता समान स्तर की है।

प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि छात्रों से उचित सम्बंध बनाने के लिए सामाजिक विषय (45%) तथा मानविकी के (42%) शिक्षक समान रूप से प्रशिक्षण को आवश्यक मानते हैं।

तालिका-10

कक्षा शिक्षण दक्षता में वृद्धि के लिए सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकतों की विषयवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
सामाजिक विज्ञान	26 (43.33)	29 (48.33)	9 (15)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 6.65$
मानविकी	15 (25)	32 (53.33)	13 (21.67)	60	
योग	**41**	**61**	**18**	**120**	

.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-10 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 6.65 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से अधिक है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इसके लिए बनी शून्य परिकल्पना कि कक्षा शिक्षण दक्षता में वृद्धि के लिए सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को अस्वीकार किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि कक्षा शिक्षण में और अधिक दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पर सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों के प्रत्यक्षण में अन्तर है।

प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामाजिक विषय के 43% तथा मानविकी 25% शिक्षक प्रशिक्षण को आवश्यक मानते हैं। स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में दक्ष होने के लिए सामाजिक विषय के शिक्षक मानविकी के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षण चाहते हैं।

तालिका-11

शोध सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की विषयवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
सामाजिक विज्ञान	30 (50)	16 (26.67)	14 (23.33)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$
मानविकी	32 (53.33)	20 (39.33)	8 (13.33)	60	χ^2 = 2.14
योग	**62**	**36**	**22**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-11 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 2.14 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इसके लिए बनी शून्य परिकल्पना कि शोध सम्बंधी क्षेत्र में दक्ष होने के लिए सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है।

प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामाजिक विषय के 50% तथा मानविकी 53% शिक्षक शोध से सम्बन्धित क्षेत्र में दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण चाहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक तथा मानविकी, दोनों विषय समूह के सदस्य समान रूप से इस क्षेत्र में प्रशिक्षण चाहते हैं।

तालिका-12

प्रबंधन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की विषयवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
सामाजिक विज्ञान	30 (50)	20 (39.33)	10 (16.67)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 2.975$
मानविकी	25 (41.67)	17 (28.33)	18 (30)	60	
योग	**55**	**37**	**28**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-12 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 2.98 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना प्रबंधन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि के लिए सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है।

प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामाजिक विषय के सर्वाधिक (50%) तथा मानविकी (42%) शिक्षक इस क्षेत्र में और अधिक दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण को आवश्यक मानते हैं।

तालिका-13 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 12.38 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से अधिक है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक है। इसके लिए बनी शून्य परिकल्पना कि मूल्यांकन सम्बंधी क्षेत्र में दक्ष होने के लिए सामाजिक विषय तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है।

तालिका-13

मूल्यांकन सम्बंधी दक्षता में वृद्धि हेतु सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकतों की विषयवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
सामाजिक विज्ञान	36 (60)	12 (20)	12 (20)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 12.38$
मानविकी	22 (36.67)	27 (45)	11 (18.35)	60	
योग	**58**	**39**	**33**	**120**	

.05 स्तर पर सार्थक

अत: हम कह सकते हैं कि मूल्यांकन सम्बंधी क्षेत्र में दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पर दोनों समूह के शिक्षकों के प्रत्यक्षण में अन्तर है।

प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामाजिक विषय के 60% शिक्षक तथा मानविकी विषय के 37% शिक्षक इस क्षेत्र में और अधिक दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण

तालिका-14

उचित सामुदायिक सम्बंध बनाने के लिए सामाजिक तथा मानविकी विषय के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता की विषयवार तुलना का χ^2 मूल्य

	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग	2X3 सारणी से χ^2 का मूल्य
सामाजिक विज्ञान	22 (36.67)	27 (45)	11 (18.33)	60	$\chi^2 = \Sigma \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$ $\chi^2 = 4.116$
मानविकी	30 (50)	17 (28.33)	13 (21.67)	60	
योग	**52**	**44**	**24**	**120**	

.05 स्तर पर असार्थक

को आवश्यक मानते हैं। तालिका से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में दक्ष होने के लिए सामाजिक विषय के शिक्षक मानविकी विषय के शिक्षकों की अपेक्षा मूल्यांकन सम्बंधी क्षेत्र प्रशिक्षण को अधिक आवश्यक मानते हैं।

तालिका–14 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 4.12 है जो कि (मुक्तांश = 2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अत: इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक है। इसके लिए बनी शून्य परिकल्पना कि उचित सामुदायिक सम्बंध बनाने हेतु सामाजिक तथा मानविकी विज्ञान के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं में सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जाता है।

अत: हम कह सकते हैं कि समुदाय से उचित सम्बंध बनाने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पर सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी के शिक्षकों की प्रत्यक्षण समान स्तर की है।

प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामुदायिक सम्बंध बनाने में दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण आवश्यकता पर सामाजिक विज्ञान के 36.67% शिक्षक तो मानविकी के 50% शिक्षक सहमति व्यक्त करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों की अपेक्षा मानविकी विज्ञान के शिक्षक इस क्षेत्र में अधिक प्रशिक्षण की मांग कर रहे हैं।

उद्देश्य–3 : शिक्षकों की अति आवश्यक दक्षता क्षेत्र ज्ञात करने के लिए मध्यमान विधि का प्रयोग किया गया।

इसके लिए मापनी के प्रत्येक दक्षता क्षेत्र में सम्मिलित किए गये कथनों के प्रति प्रतिभागियों द्वारा दिये गये अंक का मध्यमान निकाला गया तथा अंत में उसका योग करके दक्षता क्षेत्र के अनुसार मध्यमान ज्ञात किया गया है जिसका वर्णन अगले पृष्ठ पर प्रस्तुत तालिका–15 में है।

उच्च स्तरीय शिक्षकों द्वारा दो दक्षता क्षेत्रों को प्रशिक्षण के लिए अधिक आवश्यक माना गया जिसमें मूल्यांकन संबंधी दक्षता (मध्यमान 3.00) तथा वैयक्तिक दक्षता (मध्यमान 2.95) सम्मिलित है। इसका अर्थ है कि विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों द्वारा माना गया कि मूल्यांकन सम्बंधी दक्षता जिनमें छात्र मूल्यांकन तथा

तालिका-15

शिक्षक शिक्षण आवश्यकता प्राप्तांक का मध्यमान

क्रम सं.	दक्षता क्षेत्र	मध्यमान	आवश्यकता
1.	मूल्यांकन संबंधी दक्षता	3.00	अति आवश्यक
2.	वैयक्तिक दक्षता	2.95	
3.	प्रबंधकीय दक्षता	2.50	आवश्यक
4.	शोध सम्बन्धी दक्षता	2.50	
5.	कक्षा शिक्षण संबंधी दक्षता	2.45	
6.	शिक्षक छात्र संबंध दक्षता	2.44	
7.	सामुदायिक संबंध	2.00	अप्रासंगिक

स्व-मूल्यांकन शामिल किया गया है तथा वैयक्तिक दक्षता क्षेत्र अर्थात किस प्रकार स्वयं के व्यक्तित्व का अधिक विकास किया जाय, इसके लिए प्रशिक्षण चाहते हैं।

प्रबंधकीय दक्षता, शोध संबंधी दक्षता, शिक्षण संबंधी दक्षता तथा छात्र शिक्षक संबंधी दक्षता को 'आवश्यक' मानते हुए इन क्षेत्रों में दक्ष होने के लिए शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण को आवश्यक माना गया। इन सभी दक्षता क्षेत्रों का मध्यमान मूल्य 2:00 के ऊपर है जो कि 'आवश्यक प्रशिक्षण' को इंगित कर रहा है।

प्रबंधकीय दक्षता क्षेत्र के विभिन्न कथन जैसे- कक्षा समय सारणी का निर्माण, विश्वविद्यालयी प्रशासन में प्रतिभाग इत्यादि के लिए (मध्यमान 2.50) पाया गया। शोध संबंधी दक्षता के विभिन्न कौशल शोध विधि, प्रोजेक्ट चयन, प्रोजेक्ट निर्माण के लिए मध्यमान 2.50 पाया गया। शिक्षण संबंधी दक्षता जिसमें कक्षा शिक्षण के लिए तैयार होना, शिक्षण को रुचिकर बनाना, नयी शिक्षण विधि का प्रयोग करना सम्बन्धित विषय का ज्ञान इत्यादि के लिए मध्यमान 2.45 पाया गया। छात्र सम्बन्धी दक्षता के विभिन्न कौशलों जैसे- छात्रों से उचित संबंध बनाना, उनकी समस्या में रुचि लेना, योग्यता की पहचान करना इत्यादि के लिए मध्यमान 2.44 पाया गया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त दक्षता क्षेत्रों को आवश्यक मानते हुए शिक्षकों द्वारा इसमें प्रशिक्षण को आवश्यक माना गया है।

शिक्षकों द्वारा सामुदायिक संबंध तथा अन्तर्क्रिया से सम्बन्धित दक्षता क्षेत्र इससे सम्बन्धित विभिन्न कौशलों जैसे अभिभावकों को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करना, स्थानीय विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रमों में प्रतिभाग करना, अभिभावकों से विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए पृष्ठपोषण प्राप्त करना इत्यादि कथन को सम्मिलित किया गया है जिसका मध्यमान 2.00 पाया गया है, जिसका अर्थ यह निकलता है कि इस दक्षता क्षेत्र का शिक्षकों द्वारा उचित माना गया किंतु इसका योगदान शिक्षण क्षेत्र में कुछ विशेष न होने के कारण इसे प्रशिक्षण के लिए वे अप्रासंगिक मानते हैं।

निष्कर्ष

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

- .05 सार्थकता स्तर पर पाया गया कि निम्नलिखित दक्षता क्षेत्र में और अधिक दक्ष होने के लिए महिला शिक्षिकाएं, शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षण चाहती हैं:

  प्रबंधन सम्बंधी दक्षता क्षेत्र

  मूल्यांकन संबंधी दक्षता क्षेत्र

  .05 सार्थकता स्तर पर पाया गया कि 'शोध सम्बन्धी दक्षता क्षेत्र' में और अधिक दक्ष होने के लिए शिक्षक, शिक्षिकाओं की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षण चाहते हैं।

  .05 सार्थकता स्तर पर पाया गया कि उच्च शिक्षा स्तर पर विषय समूह के आधार निम्न दक्षता क्षेत्रों में प्रशिक्षण आवश्यकता पर शिक्षकों के समूह में अन्तर पाया गया।

कक्षा शिक्षण और मूल्यांकन सम्बंधी दक्षता क्षेत्र

उपरोक्त दोनों क्षेत्रों में सामाजिक विज्ञान विषय समूह के शिक्षक मानविकी विज्ञान विषय समूह के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता को व्यक्त करते हैं।

- प्रतिशत विश्लेषण से स्पष्ट है कि– 38% से 62% शिक्षक शिक्षिकाओं की अपेक्षा वैयक्तिक दक्षता क्षेत्र, शिक्षक छात्र अन्तर्क्रिया सम्बन्धी क्षेत्र तथा शोध सम्बंधी दक्षता क्षेत्र में और अधिक दक्ष होने के लिए अधिक प्रशिक्षण आवश्यकता को व्यक्त करते हैं।

- 37% से 67% शिक्षिकायें, शिक्षकों की अपेक्षा 'कक्षा शिक्षण दक्षता क्षेत्र, प्रबंधन सम्बंधी दक्षता क्षेत्र, मूल्यांकन सम्बंधी दक्षता क्षेत्र तथा सामुदायिक सम्बंध और अन्तर्क्रिया से सम्बंधी क्षेत्र में अधिक दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता व्यक्त करती हैं।

उच्च शिक्षा स्तरीय शिक्षकों के विषय समूह भेद के आधार पर पाया गया कि–

- वैयक्तिक दक्षता क्षेत्र, शिक्षक छात्र अन्तर्क्रिया सम्बंधी दक्षता क्षेत्र, कक्षा शिक्षण दक्षता क्षेत्र, प्रबंधन सम्बंधी दक्षता तथा मूल्यांकन सम्बंधी दक्षता क्षेत्र में 43% से 60% तक सामाजिक विज्ञान विषय समूह के शिक्षक मानविकी विज्ञान विषय समूह के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता व्यक्त करते हैं।
- 50% से 53% मानविकी विज्ञान विषय समूह के शिक्षक सामुदायिक सम्बंध तथा अन्तर्क्रिया क्षेत्र तथा शोध सम्बंधी दक्षता क्षेत्र में मानविकी विज्ञान विषय समूह के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता को व्यक्त करते हैं।

उपर्युक्त परिणामों को देखते हुए कह सकते हैं कि शिक्षकों द्वारा मूल्यांकन तथा वैयक्तिक दक्षता क्षेत्र को अधिक आवश्यक माना गया है जिसका कारण यह हो सकता है कि शिक्षक यह चाहते हैं कि किस प्रकार वे स्वयं का मूल्यांकन करें ताकि एक प्रभावशाली शिक्षक बन सकें जबकि वैयक्तिक दक्षता क्षेत्र को अति आवश्यक मानने का कारण स्वयं का व्यक्तिगत विकास करना हो सकता है। सामुदायिक सम्बंध तथा अन्तर्क्रिया में सम्बन्धित दक्षता क्षेत्र को अप्रासंगिक माना गया जिसका कारण इसका संबंध प्रत्यक्ष तौर पर शिक्षा तथा शिक्षण क्षेत्र से होना हो सकता है जबकि अन्य दक्षता क्षेत्र को आवश्यक माना गया।

संदर्भ

यूनेस्को (1985) एकेडमिक स्टॉफ डेवलपमेंट इन हायर एजूकेशन, रिपोर्ट ऑफ ए रीजनल वर्कशाप ऐट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू इंग्लैण्ड, आरमिडल, बैंकाक : यूनेस्को।

के. राम चन्द्राकर एवं निलावर एस.एस. (1997) परसीब्ड ट्रेनिंग नीड्स ऑफ कॉलेज टीचर्स, इन पंडा, एस. (एड) स्टॉफ डवलपमेंट इन हायर एण्ड डिस्टेंस एजूकेशन, पब्लिशड् बाई अरावली बुक इंटरनेशनल, न्यू दिल्ली।

सेन्ट्रा, जे.ए. (1976) फैकेल्टी डेवलपमेंट प्रेक्टिसेज इन यू.एस. कॉलेज एण्ड यूनिवर्सिटीज, एजूकेशनल टेस्टिंग सर्विस।

डोनाल्ड, जे.जी. एवं पाण्डेय (1977) इन्सट्रक्सनल एनालिसिस किट, मोन्ट्रियल सेन्टर फॉर लर्निंग एण्ड डेवलपमेंट मिसगिल यूनिवर्सिटी

केली, डी. (1979) रेड डीयर कॉलेज, ज स्टॉफ डेवलपमेंट सिस्टम, ए केस स्टडी ऑफ कनेडियन कम्यूनिटी कॉलेज, कॉम्प लो रिपोर्ट, 12 (10), 465-467।

सन्याल, बी.सी. (1985) न्यू चैलेंजज टू यूनिवर्सिटी स्टॉफ डेवलपमेंट, पेरिस, इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर एजूकेशनल प्लांनिंग, यूनेस्को।

सिंह, यू. (1980) द इम्पैक्ट ऑफ टीचर एजूकेशन प्रोग्राम ऑन द प्रोफेशनल इफिशियन्सी ऑफ द टीचर्स इन बुच (एड) थर्ड सर्वे ऑफ रिशर्च इन एजूकेशन, न्यू देल्ही, नेशनल काउन्सिल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग।

जेठी, आर. और कुमार, बी. (2007). एसेसिंग इफेक्टिवनेस ऑफ टीचिंग थ्रो स्टूडेन्ट रेटिंग : ए स्टडी, वाल्यूम-45, यूनिवर्सिटी न्यूज, नई दिल्ली।

कुन्डु, सी.एल. (1997). एकेडमिक ओरिएंटेशन प्रोग्राम : डेवलपमेंट स्टेटस एण्ड चैलेंजेज फॉर फ्यूचर, पंडा, एस. (सम्पादित) स्टॉफ डेवलपमेंट इन हायर एण्ड डिस्टेंस एजूकेशन, प्रकाशक अरावली बुक इंटरनेशनल, नई दिल्ली।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन

बी.के. साहू* और **रश्मि जैन****

वर्तमान युग को वैज्ञानिक युग कह सकते हैं क्योंकि वर्तमान में विज्ञान की पर्याप्त प्रगति हुई है और विज्ञान ने हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया है। अत: विज्ञान में विद्यार्थियों की रूचि बढ़ गई है। जबकि कुछ समय पहले तक ऐसी स्थिति नहीं थी। इसके साथ ही साथ इनमें कोचिंग प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। वर्तमान में वे विद्यार्थी भी विज्ञान विषय को लेकर +2 स्तर की पढ़ाई करते हैं जो इसके योग्य नहीं हैं और बाद में उन्हें कठिनाई होती है। विद्यालय में +2 स्तर पर विज्ञान की कक्षा में छात्र-छात्राओं की अधिक संख्या के कारण सह-शिक्षक सभी विद्यार्थियों पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाते हैं। तथा विद्यार्थियों में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर आते-आते विद्यालय में पढ़ने की रुचि कम हो जाती है एवम् कोचिंग के प्रति विश्वास व रूझान बढ़ता जाता है। छात्र कोचिंग को ही अपनी शिक्षा रूपी नैया को पार लगाने वाला मानने लगते हैं। कभी-कभी देखा जाता है कि विद्यालय के शिक्षक स्वयं विद्यार्थियों को उनसे कोचिंग लेने को उकसाते हैं जिसका सीधा प्रभाव कक्षा में कक्षा-शिक्षण पर पड़ता है।

कोचिंग से शिक्षा लेना गलत नहीं है लेकिन विद्यालय की उपेक्षा के साथ कोचिंग में पढ़ाई गलत है। समाज में विद्यालय स्थापना बच्चों का सर्वांगींण विकास करने के उद्देश्य से की थी। आज विद्यार्थियों का विद्यालय की कक्षाओं से कोचिंग की कक्षाओं की ओर पलायन हो रहा है। क्या इस स्थिति से प्रशासन अनजान है ऐसे कई सवाल उठते हैं जिनका समाधान होना बहुत आवश्यक है। देश की शैक्षिक तस्वीर बदलने की दिशा में अब ठोस कार्यवाही करने की जरूरत आ पड़ी है। लगभग 22 वर्ष पहले 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति देशभर में लागू की गयी थी और 1992 में इस नीति संबंधित कार्य योजना स्वीकृत की गई। इसके अंतर्गत शिक्षा प्रबंध में उल्लेखित इंडियन एजुकेशनल

* शिक्षा संकाय, डा. एच.एस. गौड़ विश्वविद्यालय सागर, मध्य प्रदेश
**शिक्षा संकाय, विश्वविद्यालयीन शिक्षा महाविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

सर्विस आई.ई.एस. का गठन किए जाने की सिफारिश की गई थी। केन्द्र स्तर पर आई.ई.एस. और राज्य स्तर पर राज्य शिक्षा सेवा के गठन के भी सुझाव पर आज तक कोई कार्यवाही न होने के कारण आज की शिक्षा की विफलता के लिये केवल शिक्षक ही उत्तरदायी नहीं है। महत्वपूर्ण व्यवस्थागत निर्णय लेने वाले लोग कोई और होते हैं। शिक्षकों और शिक्षण के क्षेत्र में जुड़े हुए लोगों को ही इस क्षेत्र में प्रबंधन के लिये जिम्मेदार बनाया जाय।

शिक्षकों के प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने के हेतु नवीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तैयार कराया जाना चाहिए। ऐसा करने से आदर्श शिक्षक को मनुष्य का निर्माता शिक्षा पद्धति की आधारशिला, समाज को गति प्रदान करने वाला आदि सब कुछ माना गया है। सभ्य समाज को आकार देने में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

बालकों को उचित शिक्षा मिले यह बहुत आवश्यक है। आज का बालक कल का नागरिक है एवं भविष्य में उसके हाथ में देश के निर्माण जैसा महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होगा। यह कार्य शिक्षक की मदद व सहयोग से ही संभव है। शिक्षण का व्यवसाय ऐसा व्यवसाय है जो बाकी सारे व्यवसायों को जन्म देता है। परन्तु वर्तमान में मदद व सहयोग विद्यार्थियों को कोचिंग के शिक्षकों से मिल रहा है। यही शिक्षक उनके भविष्य को संवारने में अपना अधिकतम योगदान दे रहे हैं। कोचिंग के शिक्षक अपने व्यवसाय के प्रति समर्पित हैं। शिक्षा और जीवन का अटूट संबंध है जो मानव विकास का एक सशक्त एवं प्रभावी माध्यम है। शिक्षा मानव जीवन का मेरूदण्ड है। यह मानव जीवन की नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसमें दो मत नहीं कि शिक्षा ही एक ऐसा शक्तिशाली माध्यम है जिसके द्वारा जीवन में सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन लाये जा सकते हैं। शिक्षा व्यक्ति की वैधानिकता का पूर्ण विकास है जिससे वह अपनी क्षमता के अनुसार मानव जीवन में योगदान कर सके। विद्यार्थी अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक विकास के लिए शिक्षा को तभी एक माध्यम बना सकते हैं जब वे व्यवस्थित व उचित शिक्षा ग्रहण कर सकें।

स्वतंत्रता के पश्चात सम्पूर्ण भारत के साथ-साथ मध्यप्रदेश में शिक्षा का स्तर बढ़ा है। +2 स्तर की शिक्षा के लिये अब विद्यालयों की कमी नहीं है। हर कस्बे व शहर में +2 स्तर की शिक्षा की व्यवस्था है। प्रत्येक विषय के शिक्षकों की नियुक्ति की जा रही है। सत्र 2005-06 में लगभग 50 हजार संविदा शिक्षकों की नियुक्ति की गई है। इस प्रकार मध्य प्रदेश में प्रत्येक स्तर की शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था है।

परन्तु आज यह देखा जा रहा है कि विद्यार्थी उच्चतर माध्यमिक स्तर पर आते ही विद्यालय से कतराने लगते हैं। सत्र प्रारंभ होने के कुछ समय बाद विद्यालय में छात्रों की उपस्थिति घटती जाती है। इस स्तर पर छात्रों के लिये विद्यालय केवल समय बिताने का स्थान हैं, शिक्षा प्राप्त करने का नहीं। इसका तात्पर्य है कि शिक्षा ग्रहण करने का स्थान कहीं और ही है।

विद्यालय के प्रति छात्रों की कम होती रूचि का मुख्य कारण है समाज में फैली कोचिंग कक्षाएं। आज के समय में कोचिंग जाना रिवाज हो गया है। अधिकतर विद्यालयों में पर्याप्त शिक्षा न मिलने के कारण विद्यार्थी कोचिंग की तरफ अग्रसर होते हैं। यदि विद्यालय छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती तो वह कोचिंग का रूख कभी नहीं करते। विद्यालय केवल परीक्षा में सम्मिलित होने का माध्यम है और विद्यार्थियों की पढ़ाई कोचिंग में पूरी हो रही है।

कोचिंग उन विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त है जो पढ़ाई में कमजोर होते हैं और कक्षा में अग्रसर अन्य विद्यार्थियों से पीछे रह जाते हैं। उनके लिए कोचिंग सहारे का काम करती है। इस प्रकार कोचिंग का सहारा लेकर अपना शैक्षिक स्तर सुधारने की कोशिश करते हैं। परंतु आज विद्यार्थियों में कोचिंग में पढ़ने की प्रतिस्पर्धा लगी हुई हैं। इस होड़ में छात्र बिना सोचे समझे शामिल हो रहे हैं।

कोचिंग की प्रवृत्ति विज्ञान समूह के विद्यार्थियों में अधिक मिलती है। यह तो सर्वमान्य है कि विज्ञान से संबंधित विषय कठिन होते हैं। जो समय और मेहनत मांगते हैं। परंतु आज के विद्यार्थियों में धैर्य और आत्मविश्वास की कमी हो रही है। इसका परिणाम यह है कि कोचिंग में विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ रही है और विद्यालयों से घट रही है।

कोचिंग शिक्षा में समाहित अवधारणाओं को विज्ञान समूह के विभिन्न विद्यार्थी किस प्रकार ग्रहण करते हैं। कोचिंग को महत्व दिये जाने के पीछे विद्यार्थियों के क्या दृष्टिकोण हैं। विद्यार्थियों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति पर कोचिंग का प्रभाव क्या है। यह सब जानने के लिए इस समस्या पर अध्ययन की आवश्यकता हुई।

अध्ययन के उद्देश्य

1. कोचिंग के प्रति उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की नकारात्मक एवं सकारात्मक दृष्टिकोण या अभिवृत्ति का मापन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के कोचिंग के प्रति बढ़ते रुझान के कारणों को

ज्ञात करना।

3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की विद्यालय के प्रवृत्ति में समाज के योगदान की जानकारी प्राप्त करना।
4. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की कोचिंग के प्रवृत्ति में समाज के योगदान की जानकारी प्राप्त करना।
5. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की कोचिंग के प्रवृत्ति के लिए विद्यालय बाह्य परिवेश, प्रोत्साहन एवं परीक्षा जैसे प्रेरक तत्वों के योगदान की जानकारी प्राप्त करना।

परिकल्पना

1. कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति के प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं होगा।
2. कोचिंग के प्रति छात्र और छात्राओं की सकारात्मक अभिवृत्ति के प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं होगा।
3. कोचिंग के प्रति छात्र और छात्राओं की नकारात्मक अभिवृत्ति के प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं होगा।
4. कोचिंग बनाम विद्यालय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति के प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं होगा।
5. कोचिंग बनाम बाह्य परिवेश के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति के प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं होगा।
6. कोचिंग बनाम परिवार प्रोत्साहन के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति के प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं होगा।
7. कोचिंग बनाम परीक्षा के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति के प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं होगा।

प्रादर्श एवं प्रयोज्य

अध्ययन के क्षेत्र की व्यापक्ता एवं समय सीमा को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि शोध के क्षेत्र को सीमित किया जाये। इस दृष्टिकोण से अध्ययन की निम्न परिसीमायें निर्धारित की गई हैं। अध्ययन को बीना नगर जो कि जिला सागर का प्रमुख

नगर है तक सीमित रखा है। बीना नगर में प्राथमिक स्तर के उच्च स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था है। जल्द ही बीना नगर से 10 किलोमीटर दूर तेल शोधक कारखाना बनने जा रहा है।

प्रस्तुत शोध में केवल बीना नगर के उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को लिया गया है जो कक्षा 12 के विज्ञान समूह से हैं।

प्रस्तुत शोध में 100 विद्यार्थियों को न्यादर्श में शामिल किया गया है कि शोध के क्षेत्र की जनसंख्या का पर्याप्त प्रतिनिधित्व करें।

प्रस्तुत शोध में अध्ययन हेतु बीना नगर की उच्चतर माध्यमिक स्तर की विज्ञान समूह की शिक्षा प्रदान करने वाले चार विद्यालयों को चुना गया है।

विद्यालय	**बालक**	**बालिकाएं**
केन्द्रीय विद्यालय, बीना	20	20
डी.ए.वी कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बीना	–	20
शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, क्रमांक 2 बीना	30	20
शासकीय उत्कृष्ट उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बीना	50	40

तालिका–1

कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति के प्राप्त अंकों का मध्यमान मानक विचलन एवं सी.आर.

अभिवृत्ति	**संख्या**	**मध्यमान**	**मानक विचलन**	**सी.आर.**
सकारात्मक	100	55.45	6.64	
नकारात्मक	100	53.25	7.85	2.14

df=198 p.01 स्तर सार्थक

तालिका–1 यह दर्शाती है कि कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति पर मध्यमान अंक क्रमशः 55.45 एवं 53.25 है। विद्यार्थियों का

कोचिंग के प्रति सकारात्मक अंक नकारात्मक अंक से 2.20 ज्यादा है एवं सी.आर. 2.14 है। इस प्रकार दोनों ही चरों के मध्यमान अंकों में .01 स्तर की विश्वसनीयता पर सार्थक अंतर देखने को मिलता है। कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मकता, नकारात्मकता से ज्यादा है एवं यह अंतर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है।

तालिका-2

कोचिंग बनाम विद्यालय के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक अभिवृत्ति के प्राप्त अंकों का मध्यमान मानक विचलन एवं सी.आर.

अभिवृत्ति	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	सी.आर.
कोचिंग के प्रति	100	26.2	4.14	
विद्यालय के प्रति	100	17.8	5.67	15.63

df=198 p.01 स्तर सार्थक

तालिका-2 यह दर्शाती है कि कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति पर मध्यमान अंक क्रमशः 26.2 एवं 17.8 है। विद्यार्थियों का कोचिंग के प्रति सकारात्मक अंक विद्यालय के प्रति सकारात्मक अंक से 8.4 ज्यादा है एवं सी.आर. 15.63 है। इस प्रकार दोनों ही चरों के मध्यमान अंकों में .01 स्तर की विश्वसनीयता पर सार्थक अंतर देखने को मिलता है। कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मकता, नकारात्मकता से ज्यादा है एवं यह अंतर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है।

तालिका-3

कोचिंग बनाम बाह्य परिवेश के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति के प्राप्त अंकों का मध्यमान मानक विचलन एवं सी.आर.

क्रियाकलाप	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	सी.आर.
कोचिंग के प्रति	100	10.4	1.88	
विद्यालय के प्रति	100	10.54	52.5	0.35

df=198 p.01 स्तर असार्थक

तालिका–3 यह दर्शाती है कि कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति पर मध्यमान अंक क्रमश: 10.4 एवं 10.54 है विद्यार्थियों का कोचिंग के प्रति अभिवृत्ति अंक बाह्य परिवेश के प्रति अंक 0.14 से ज्यादा है एवं सी.आर. 0.35 है। इस प्रकार दोनों ही चरों के मध्यमान अंकों में .01 स्तर की विश्वसनीयता पर सार्थक अंतर देखने को मिलता है। कोचिंग के प्रति एवं विद्यालय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में ज्यादा अंतर नहीं है जो सांख्यिकीय रूप से असार्थक है।

तालिका–4

कोचिंग बनाम परिवार से प्रोत्साहन के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति के प्राप्त अंकों का मध्यमान मानक विचलन एवं सी.आर.

व्यवहार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	सी.आर.
कोचिंग के प्रति	100	9.3	1.73	
विद्यालय के प्रति	100	11.66	2.38	8.03

df=198 p.01 स्तर सार्थक

तालिका–4 यह दर्शाती है कि कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति पर मध्यमान अंक क्रमश: 9.3 एवं 11.66 है। विद्यार्थियों का कोचिंग के प्रति अभिवृत्ति अंक परिवार से प्रोत्साहन के प्रति अभिवृत्ति अंक 2.36 से कम है एवं सी.आर. 8.03 है। इस प्रकार दोनों ही चरों के मध्यमान अंकों में .01 स्तर की विश्वसनीयता पर सार्थक अंतर देखने को मिलता है। कोचिंग के प्रति अभिवृत्ति परिवार से प्रोत्साहन की अभिवृत्ति से कम है एवं यह अंतर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है।

तालिका–5

कोचिंग बनाम परिवार परीक्षा के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति के प्राप्त अंकों का मध्यमान मानक विचलन एवं सी.आर.

परीक्षा की तैयारी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	सी.आर.
कोचिंग के द्वारा	100	12.86	2.67	
विद्यालय के स्वयं के द्वारा	100	7.74	1.75	14.1

df=198 p.01 स्तर सार्थक

तालिका–5 यह दर्शाती है कि कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति पर मध्यमान अंक क्रमश: 12.86 एवं 7.74 है। विद्यार्थियों का कोचिंग के प्रति अभिवृत्ति अंक विद्यार्थियों के स्वयं के द्वारा अभिवृत्ति अंक 5.12 से कम है एवं सी.आर. 14.1 है। इस प्रकार दोनों ही चरों के मध्यमान अंकों में .01 स्तर की विश्वसनीयता पर सार्थक अंतर देखने को मिलता है। कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों के स्वयं के द्वारा अभिवृत्ति से कम है। यह अंतर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है।

परिकल्पनाओं का सत्यापन

1. वर्तमान अनुसंधान के प्राप्त परिणाम इस प्रस्तावित कथन को स्वीकार करते हैं। अत: यह परिकल्पना स्वीकार की जाती है। तालिका 1 से स्पष्ट है कि कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति में भिन्नता है व कॉई स्कावयर 1.20, $P < .05$ स्तर पर भी सार्थक हैं।

   अत: निश्चित रूप से कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति के अंकों में अन्तर संयोगवश नहीं है। इस प्रकार दोनों चरों में सांख्यिकीय रूप से अन्तर हैं। हम शून्य परिकल्पना स्वीकार करते है एवं परिकल्पना–1 स्वीकृत की जाती है।

2. वर्तमान अनुसंधान के प्राप्त परिणाम इस प्रस्तावित कथन को स्वीकार करते हैं। अत: यह परिकल्पना स्वीकार की जाती है। तालिका 2 से स्पष्ट है कि कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की कोचिंग बनाम विद्यालय के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक अभिवृत्ति में भिन्नता है व कॉई स्कावयर 1.20, $P < .05$ स्तर पर भी सार्थक हैं।

   अत: निश्चित रूप से कोचिंग बनाम विद्यालय के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक अभिवृत्ति के अंकों में अन्तर संयोगवश नहीं है। इस प्रकार दोनों चरों में सांख्यिकीय रूप से अन्तर हैं हम शून्य परिकल्पना स्वीकार करते है एवं परिकल्पना–2 स्वीकृत की जाती है।

3. वर्तमान अनुसंधान के प्राप्त परिणाम इस प्रस्तावित कथन को स्वीकार करते हैं। अत: यह परिकल्पना स्वीकार की जाती है। तालिका 3 से स्पष्ट है कि कोचिंग बनाम बाह्य परिवेश के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में भिन्नता है व कॉई स्कावयर 1.20, $P < .05$ स्तर पर भी सार्थक हैं।

   अत: निश्चित रूप से अंकों में अन्तर संयोगवश नहीं है। इस प्रकार दोनों चरों में

सांख्यिकीय रूप से अन्तर है। हम शून्य परिकल्पना अस्वीकार करते हैं एवं परिकल्पना तीन अस्वीकृत की जाती है।

4. वर्तमान अनुसंधान के प्राप्त परिणाम इस प्रस्तावित कथन को स्वीकार करते हैं। अत: यह परिकल्पना स्वीकार की जाती है। तालिका 4 से स्पष्ट है कि कोचिंग बनाम परिवार प्रोत्साहन के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में भिन्नता है व कॉई स्कावयर 1.20, $P < .05$ स्तर पर भी सार्थक हैं।

   अत: निश्चित रूप से अंकों में अन्तर संयोगवश नहीं है। इस प्रकार दोनों चरों में सांख्यिकीय रूप से अन्तर हैं। हम शून्य परिकल्पना अस्वीकार करते हैं एवं परिकल्पना चार अस्वीकृत की जाती है।

5. वर्तमान अनुसंधान के प्राप्त परिणाम इस प्रस्तावित कथन को स्वीकार करते हैं। अत: यह परिकल्पना स्वीकार की जाती है। तालिका 5 से स्पष्ट है कि कोचिंग बनाम परीक्षा के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में भिन्नता है व कॉई स्कावयर 1.20, $P < .05$ स्तर पर भी सार्थक हैं।

   अत: निश्चित रूप से अंकों में अन्तर संयोगवश नहीं है। इस प्रकार दोनों चरों में सांख्यिकीय रूप से अन्तर है। हम शून्य परिकल्पना अस्वीकार करते है एवं परिकल्पना पांच अस्वीकृत की जाती है।

परिणामों की व्याख्या

कोचिंग के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक अभिवृत्ति का स्तर नकारात्मक अभिवृत्ति से उच्च है अर्थात विद्यार्थी का कोचिंग के प्रति दृष्टिकोण नकारात्मक की अपेक्षा सकारात्मक अधिक है।

विद्यार्थियों की कोचिंग के प्रति अभिवृत्ति का स्तर विद्यालय के प्रति अभिवृत्ति से उच्च है अर्थात विद्यार्थी विद्यालय की अपेक्षा कोचिंग जाना सार्थक समझते हैं। विद्यार्थियों का कोचिंग व बाह्य परिवेश के प्रति अभिवृत्ति का स्तर एक जैसा ही है। अर्थात विद्यार्थियों की कोचिंग प्रवृत्ति का उनके बाह्य परिवेश पर प्रभाव पड़ता है और नहीं भी पड़ता है। विद्यार्थियों की कोचिंग की तुलना में परिवार प्रोत्साहन के प्रति अभिवृत्ति का स्तर उच्च है। अर्थात विद्यार्थियों की पढ़ाई पर कोचिंग की अपेक्षा परिवार प्रोत्साहन का प्रभाव ज्यादा होता है तथा कोचिंग प्रवृत्ति परिवार प्रोत्साहन से बढ़ती है। विद्यार्थियों की कोचिंग बनाम परीक्षा के प्रति अभिवृत्ति में परीक्षा अभिवृत्ति की तुलना में कोचिंग अभिवृत्ति का स्तर उच्च है। अर्थात विद्यार्थी में कोचिंग अभिवृत्ति परीक्षा में

अच्छे अंक पाने के दबाव के कारण बढ़ रही है। परीक्षाओं का भय उन्हें कोचिंग के लिए प्रेरित करता है।

सुझाव

1. छात्र व छात्राओं को छोटी कक्षाओं में कोचिंग में पढ़ने के लिए अभिभावकों द्वारा प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।
2. अभिभावकों को विद्यालय के शिक्षकों से संपर्क करके छात्रों को कोचिंग प्रवृत्ति के विषय में चर्चा करना चाहिए जिससे वे इस ओर ध्यान दे सकें।
3. कोचिंग चलाने वाले विद्यालयीन शिक्षिका विद्यालय के कक्षा शिक्षण पर भी पूर्ण ध्यान व रूचि रखे न कि सिर्फ कोचिंग शिक्षण पर।
4. कोचिंग के शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को स्वयं भी मेहनत करने के लिए प्रोत्साहन करना चाहिए।
4. विद्यार्थियों के मन से परीक्षा का डर निकाल कर पूर्ण आत्मविश्वास से मेहनत करने में मदद करना चाहिए।

संदर्भ

अदावल, सुबोध एवं उनियाल माधवेन्द्र (1974) भारतीय शिक्षा की समस्यायें, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान संगोष्ठी (2008) प्रारंभिक शिक्षा समस्यायें तथा निदान

एच.के. कपिल, सांख्यिकी के मूल तत्व, हरप्रसाद भार्गव 4/230 कचहरी घाट आगरा

जौहरी वी.पी. एवं पी.डी. पाठक (2001) भारतीय शिक्षा इतिहास, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

माथुर एस.एल., शिक्षा मनोविज्ञान, आर लाल बुक डिपो, मेरठ

पी.डी. पाठक, शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

पांडे, रामसकल (1999) नई शिक्षा नीति, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

राय, पारसनाथ एवं चंद, भटनागर (1973) अनुसंधान परिचय, लक्ष्मीनारायण, आगरा

शर्मा आर.ए. (1995) शिक्षा अनुसंधान आर लाल बुक डिपो, मेरठ

सिंह, रामपाल (1983) विद्यालय संगठन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

सिंह, रामपाल एवं शर्मा, ओ.पी. (2008) शैक्षणिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

दृष्टिबाधित, मूकबधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

कमलेश यादव* और **गोपाल प्रसाद नायक****

व्यक्ति अपने वातावरण से जो सूचनायें और ज्ञान अर्जित करता है उन्हीं की सहायता से उसमें समायोजित होने का प्रयास करता है। आँख और कान ऐसी महत्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रियां हैं कि व्यक्ति द्वारा अधिकांश ज्ञान और सूचनायें इन्हीं के द्वारा प्राप्त की जाती हैं परन्तु जब यही ज्ञानेन्द्रियां अपना काम करना बन्द कर देती हैं तो मनुष्य अपने वातावरण संबंधी अनेक क्रियाओं और सूचनाओं के ज्ञान से वंचित हो जाता है। परिणामस्वरूप उसे अनेक मनो-सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है और वह स्वयं के साथ तथा अपने वातावरण में मौजूद व्यक्तियों, वस्तुओं एवं क्रियाओं के साथ सामान्य लोगों की भाँति समायोजन स्थापित करने में कठिनाई महसूस करने लगता है।

भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार 21,906,769 व्यक्ति ऐसे हैं जो किसी न किसी प्रकार की विकलांगता से पीड़ित हैं। इनमें सर्वाधिक 10,634,881 दृष्टिबाधित है तथा 1,640,868 वाणी विकलांग एवं 1,261722 श्रवण विकलांग हैं। देश में इनकी शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं पुनर्वास के लिए उपलब्ध संसाधनों की स्थिति मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही दृष्टि से संतोषजनक नहीं हैं। दृष्टिबाधित एवं मूक-बधि ार बच्चों की शिक्षा स्थिति तो और भी अधिक खराब है क्योंकि अशिक्षा, गरीबी एवं जागरूकता के अभाव में लोग समझते हैं कि दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर बच्चे पढ़ लिख नहीं सकते हैं। देश में इस समय 2500 विशेष विद्यालय ही संचालित हैं जो इनकी संख्या के अनुपात में पर्याप्त नहीं हैं। मेहता (2007) द्वारा प्रस्तुत विश्लेषणात्मक रिपोर्ट के अनुसार सत्र 2005-06 में कक्षा-1 से 8 तक कक्षाओं में कुल पंजीकृत

* शोधछात्र, शिक्षा संकाय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
** आचार्य, शिक्षा संकाय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

विद्यार्थियों में 0.96 प्रतिशत ही विकलांग विद्यार्थी पंजीकृत थे। कुल पंजीकृत विकलांग विद्यार्थियों में 21.10 प्रतिशत दृष्टिबाधित, 9.74 प्रतिशत श्रवण बाधित एवं 11.83 वाणी विकलांग विद्यार्थियों का ही देश के विभिन्न विद्यालयों में पंजीकरण हुआ है। यह आंकड़ा उनकी संख्या के अनुपात में अत्यंत कम है। संसाधनों का अभाव व पुनर्वास संबंधी सुविधाओं की कमी के कारण भी इन विद्यार्थियों के समायोजना प्रारूप में अनेक कमियां आ जाती हैं।

दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर विद्यार्थियों के सामाजिक, संवेगात्मक एवं शैक्षिक समायोजन का सामान्य विद्यार्थियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन का भारत में अत्यन्त अभाव है। विदेशी शोधकर्त्ताओं ने इन समूहों पर अनेक शोध किये हैं। अधिकांश अध्ययनकर्त्ताओं के निष्कर्ष स्पष्ट करते हैं कि दृष्टिहीन एवं मूक-बधिर विद्यार्थियों का समायोजन प्रारूप सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से खराब है। सोमर्स (1944) ने अपने अध्ययन में पाया कि दृष्टिहीन किशोरों का व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन निम्न स्तर का है जिस पर उनके सामाजिक वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ता है। बार्कर (1953) ने बधिर होने की उम्र एवं उनके समायोजन में संबंध ज्ञात करने वाले 13 अध्ययनों का पुनरावलोकन करके यह निष्कर्ष निकाला कि कम उम्र में बधिर हो जाने वाले लोगों में समायोजन की समस्यायें अधिक होती हैं। विलियन्स (1981) एवं राम (1992) ने अपने अध्ययनों में पाया कि मूक-बधिर बच्चों का समायोजन बाला (1985) ने निष्कर्ष निकाला कि संवेगात्मक अस्थिरता, कठोरता, गम्भीरता, अलगावपन, पराश्रिता एवं लज्जालुपन की प्रवृति सभी प्रकार के विकलांगों में पायी जाती है। स्टींसन एवं ह्वाइटमायर (1991) तथा थॉमस एवं अन्य (1996) ने अपने अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि मूक-बधिर विद्यार्थी सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में अपने मूक-बधिर साथियों के साथ अधिक भावात्मक सुरक्षा महसूस करते हैं और वे इन्हीं के साथ संबंध बनाना अधिक पसन्द करते हैं। जॉन एवं अन्य (2006) ने निष्कर्ष निकाला कि दृष्टिबाधितों को सामान्य लोगों के साथ समायोजन स्थापित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कुछ अध्ययनों के निष्कर्ष दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर विद्यार्थियों के अच्छे समायोजन से भी संबंधित है जैसे- सतपथी एवं सिंघल (2003) ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला है कि श्रवण बाधित बच्चे सामान्य बच्चों की तुलना में संवेगात्मक एवं सामाजिक दृष्टि से अधिक समायोजित हैं। इस

प्रकार का निष्कर्ष ज्योथिल, एवं रेड्डी (1996) का था। राम (1992) ने दृष्टिबाधितों का समायोजन सामान्य बालकों से अच्छा पाया था।

इस प्रकार सोमर्स (1944), बार्कर (1953) विलियम्स (1981), बाला (1985), स्टींसन एवं ह्वाइटमायर (1991), थॉमस एवं अन्य (1996), जॉन एवं अन्य (2006) के अध्ययनों में जहाँ दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर बच्चों का समायोजना प्रारूप सामान्य बच्चों की तुलना खराब पाया गया है तो वहीं सतपथी एवं सिंघल (2003) तथा ज्याथिल एवं रेड्डी (1996) के अध्ययनों में दृष्टिबाधित बच्चों का समायोजन सामान्य बच्चों से अच्छा पाया है।

दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर विद्यार्थियों के समायोजन से संबंधित शोध अध्ययनों का भारत में अभाव तथा कुछ अध्ययनों के निष्कर्षों में मतभेद होने के कारण इस अध्ययन को करने का निर्णय किया गया। प्रस्तुत अध्ययन की सहायता से शोधकर्त्ता ने इस प्रश्न का हल खोजने का प्रयास किया है कि दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन स्तर कैसा है? और इन समूहों के समायोजन (परिवार, स्वास्थ्य, सामाजिक, संवेगात्मक, शैक्षिक) में क्या अंतर है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन-प्रारूप में अंतर ज्ञात करना।
2. दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के परिवार, स्वास्थ्य, सामाजिक, संवेगात्मक एवं शैक्षिक समायोजन में अंतर ज्ञात करना।

अध्ययन की परिकल्पनायें

1. दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन-प्रारूप में सार्थक अंतर नहीं है।
2. दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के परिवार, स्वास्थ्य, सामाजिक, संवेगात्मक एवं शैक्षिक समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण शोध विधि का उपयोग किया गया है।

अध्ययन के प्रतिदर्श

प्रस्तुत अध्ययन के उत्तर प्रदेश के वाराणसी, इलाहाबाद, गोरखपुर एवं लखनऊ जिलों के विशिष्ट एवं सामान्य विद्यालयों की हाईस्कूल कक्षाओं में अध्ययनरत 204 दृष्टिबाधित, 192–मूकबधिर एवं 216–सामान्य विद्यार्थियों का चयन स्तरीकृत दैव प्रतिदर्शन विधि से किया गया है।

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में समायोजन के मापन के लिए सिंह, एवं सेन गुप्ता, (1987) द्वारा निर्मित हाईस्कूल समायोजन अनुसूची का उपयोग किया गया है। यह अनुसूची कक्षा–7 से 10 तक के विद्यार्थियों के घर, स्वास्थ्य, सामाजिक, संवेगात्मक एवं विद्यालय में समायोजन का मापन करती हैं। इसमें प्रत्येक समायोजन क्षेत्र के लिए 30 एकांश (कुल 30X5 = 150 एकांश) हैं। इसकी विश्वसनीयता परीक्षण–पुनः परीक्षण विधि से 0.764 तथा विभक्तार्द्ध विधि से 0.825 है तथा वैधता 'बेल समायोजन अनुसूची' की सहायता से वैध पायी गयी है। इसका निष्कर्ष एवं व्याख्या निम्न तालिकाओं द्वारा दर्शायी गयी है :

तालिका–1

दृष्टिबाधित, मूक–बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के सम्पूर्ण समायोजन के प्राप्तांकों का मध्यमान मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

तुलनात्मक समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
दृष्टिबाधित बनाम मूक–बधिर	204 192	81.156 72.822	18.424 24.166	3.859**
दृष्टिबाधित बनाम सामान्य	204 216	81.156 102.138	18.424 23.997	9.987**
मूक–बधिर बनाम मूक–बधिर	192 216	72.822 102.138	24.166 23.997	12.249**

** = 0.1 सार्थकता स्तर पर सार्थक हैं।

तालिका-1 से स्पष्ट है कि प्राप्त तीनों 'टी' मूल्य 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक हैं अर्थात् दृष्टिबाधित, मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन प्रारूप में सार्थक अन्तर है। मूक-बधिर विद्यार्थियों का समूह दृष्टिबाधित एवं सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक दृष्टि से सबसे कम समायोजित हैं, दृष्टिबाधित विद्यार्थियों का समायोजन मूक-बधिर विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक दृष्टि अच्छे स्तर का है परन्तु सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में खराब स्तर का है।

तालिका-2

दृष्टिबाधित, मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के सम्पूर्ण समायोजन संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

तुलनात्मक समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
दृष्टिबाधित	204	18.308	4.183	
बनाम				6.653**
मूक-बधिर	192	15.588	3.917	
दृष्टिबाधित	204	18.308	4.183	
बनाम				4.794**
सामान्य	216	20.319	4.375	
मूक-बधिर	192	15.588	3.917	
बनाम				11.423**
मूक-बधिर	216	20.319	4.375	

** = 0.1 सार्थकता स्तर पर सार्थक हैं।

तालिका-2 से स्पष्ट है कि प्राप्त तीनों 'टी' मूल्य 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक हैं अर्थात् दृष्टिबाधित, मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन में सार्थक अन्तर है। मूक-बधिर विद्यार्थियों का समूह अन्य दोनों समूहों की तुलना में सार्थक दृष्टि से खराब घरेलू समायोजन रखता है, दृष्टिबाधित विद्यार्थी सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में खराब परन्तु मूक-बधिर विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक दृष्टि से अच्छे घरेलू समायोजन का प्रदर्शन किया है।

तालिका-3

दृष्टिबाधित, मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के स्वास्थ्य संबंधी समायोजन के प्राप्तांकों का मध्यमान मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

तुलनात्मक समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
दृष्टिबाधित बनाम मूक-बधिर बनाम	204 192	17.088 17.609	3.911 3.937	1.312
दृष्टिबाधित सामान्य	204 216	17.088 20.953	3.911 4.165	9.779**
मूक-बधिर बनाम मूक-बधिर	192 216	17.609 20.953	3.937 4.165	8.287**

** = 0.1 सार्थकता स्तर पर सार्थक हैं।

तालिका-3 यह प्रदर्शित करती है कि दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर विद्यार्थियों का समूह सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में स्वास्थ्य की दृष्टि से 0.01 स्तर पर सार्थक दृष्टि से कम समायोजित है। मूक-बधिर दृष्टिबाधित विद्यार्थियों की तुलना अधिक समायोजित है परन्तु इनके बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-4

दृष्टिबाधित, मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

तुलनात्मक समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
दृष्टिबाधित बनाम मूक-बधिर	204 192	15.058 13.546	4.066 4.207	3.629**
दृष्टिबाधित बनाम सामान्य	204 216	15.058 20.129	3.066 4.656	11.831**
मूक-बधिर बनाम मूक-बधिर	192 216	13.546 20.129	4.207 4.066	14.881**

** = 0.1 सार्थकता स्तर पर सार्थक हैं।

तालिका-4 से स्पष्ट है कि मूक-बधिर विद्यार्थी दृष्टिबाधितों की तुलना में 0.05 स्तर पर तथा सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में 0.01 स्तर पर सार्थक दृष्टि से निम्नस्तरीय सामाजिक समायोजन रखते हैं। इसी प्रकार दृष्टिबाधितों ने सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में 0.01 स्तर पर सार्थक दृष्टि से कम सामाजिक समायोजन का प्रदर्शन किया है।

तालिका-5

दृष्टिबाधित, मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के संवेगात्मक समायोजन संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

तुलनात्मक समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
दृष्टिबाधित	204	14.245	4.127	
बनाम				4.246**
मूक-बधिर	192	12.458	4.226	
दृष्टिबाधित	204	14.245	4.127	
बनाम				15.180**
सामान्य	216	20.643	4.471	
मूक-बधिर	192	12.458	4.226	
बनाम				18.894**
मूक-बधिर	216	20.643	4.471	

** = 0.1 सार्थकता स्तर पर सार्थक हैं।

तालिका-5 से स्पष्ट है कि मूक-बधिर विद्यार्थी दृष्टिबाधितों एवं सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में 0.01 स्तर पर सार्थक दृष्टि से कम संवेगात्मक समायोजन रखते हैं। जबकि दृष्टिबाधित संवेगात्मक समायोजन की दृष्टि से सामान्य बच्चों से कम परन्तु मूक-बधिर विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक दृष्टि से उच्च स्तर का संवेगात्मक समायोजन रखते हैं।

तालिका-6

दृष्टिबाधित, मूक-बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन संबंधी के प्राप्तांकों का मध्यमान मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

तुलनात्मक समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य
दृष्टिबाधित बनाम मूक-बधिर	204 192	16.455 13.619	3.887 4.131	7.021**
दृष्टिबाधित बनाम सामान्य	204 216	16.455 20.092	3.887 4.593	8ण्717**
मूक-बधिर बनाम मूक-बधिर	192 216	13.619 20.092	4.131 4.593	14.861**

** = 0.1 सार्थकता स्तर पर सार्थक हैं।

तालिका-6 से स्पष्ट है कि दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर विद्यार्थियों के दोनों समूह सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में 0.01 स्तर पर सार्थक दृष्टि से निम्न कोटि का शैक्षिक समायोजन रखते हैं। मूक-बधिर विद्यार्थी दृष्टिबाधितों की तुलना में भी निम्न कोटि का शैक्षिक समायोजन रखते हैं।

अध्ययन की शैक्षिक उपादेयता

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक निहितार्थ रखते हैं। दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर विद्यार्थी सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रियों का अभाव रखते हैं। उनके प्रति समाज की अभिवृत्ति, पुनर्वास एवं उनकी देखभाल के लिए उपलब्ध संसाधन इत्यादि अनेक कारण हैं जो उनके समायोजन को प्रभावित करते हैं। मूक-बधिर विद्यार्थियों ने अन्य दोनों समूहों की तुलना में समायेजन के अन्य सभी आयामों पर निम्नकोटि के समायोजन का प्रदर्शन किया है। वे केवल स्वास्थ्य संबंधी समायोजन में दृष्टिबाधितों के साथ कोई सार्थक अन्तर नहीं रखते हैं। जहाँ तक दृष्टि

बाधित विद्यार्थियों के समायोजन की बात है इन्होंने मूक-बधिर विद्यार्थियों की तुलना में तो स्वास्थ्य के अतिरिक्त अन्य सभी आयामों में अच्छे समायोजन का प्रदर्शन किया है परन्तु सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में मूक-बधिर विद्यार्थियों की भाँति ये भी निम्न कोटि का समायोजन रखते हैं। इसी प्रकार के निष्कर्ष सोमर्स (1944), थॉमस एवं अन्य (1996), जॉन एवं अन्य (2006) तथा राम (1992) ने अपने अध्ययनों में प्राप्त किये थे।

दृष्टिबाधित एवं मूक-बधिर विद्यार्थियों के कम समायोजित होने का कारण सम्भवत: यह हो सकता है कि दृष्टिबाधित विद्यार्थियों को अपने वातावरण में घूमने-फिरने का कम अवसर मिलता है तो दूसरी ओर मूक-बधिर विद्यार्थी मौखिक सम्प्रेषण करने में असमर्थ रहते हैं। सम्प्रेषण का अभाव मूक-बधिरों में अनेक सामाजिक एवं संवेगात्मक जटिलतायें उत्पन्न करता है जिससे वे कुंठा के शिकार हो जाते हैं जो उनके समायोजन को प्रत्येक स्तर पर नकारात्मक दृष्टि से प्रभावित करता है। दृष्टिबाधित आवागमन संबंधी सीमाओं के कारण खेलने-कूदने एवं प्राकृतिक वातावरण से सीधा संबंध बनाने में असफल रहते हैं इसीलिए सम्भवत: सामान्य की तुलना में कम समायोजित पाये गये हैं।

संदर्भ

मेहता, ए.सी., (2007), एलिमेंट्री एजुकेशन इन डंडिया, 'अनालिटिकल रिपोर्ट' 2005-06, न्यूपा, नई दिल्ली, पृ. 138-140

सोमर्स वीटा एस. (1944), द इन्फ्लूएंस आफ पेरेन्टल एटीट्यूट एंड सोशल इनवायरमेंट आन द पर्सनालिटी डवलपमेंट आफ एडोलेंस ब्लाइंड, न्यूयार्क, अमेरिकन फाउण्डेशन फार द ब्लाइंड

बार्कर, आर.जी., राइट, बी.ए., मेयरसन, एल एंड गोनिक, एम.आर. (1953), एडजस्मेंट टू फिजिकल हैंडीकैप एंड इलनैस। ए सर्वे आफ द सोशल-फिजियोलॉजी आफ फिजिक एंड डिसएबिलिटी (संशोधित संस्करण), न्यूयार्क सोशल साइंस रिसर्च काउंसिल, बुल, 55, पृ. 154

विलियम्स, के.एफ. (1981), ए स्टडी आफ एडजस्टमेंट आफ द ब्लाइंड एंड डीफ स्टूडेंट इन स्टेंडर्ड V, VI, VII आफ स्पेशल स्कूल इन कर्नाटक, न्यू होराइजन कॉलेज आफ एजुकेशन, बंगलौर

राम, पी.एस. (1992), जूनियर हाईस्कूल कक्षाओं में अध्ययनरत अंध, मूक-बधिर एवं सामान्य

बालकों के समायोजन, व्यक्तित्व, स्वास्थ्य एवं समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन (शिक्षा) का.हि.वि.वि., वाराणसी

बाला, एम., (1985), ए कम्परेटिव स्टडी आफ द मेंटल मेक-अप एंड एजुकेशनल फैसिलिटी फार फिजिकली हैंडीकैप एंड नार्मल चिल्ड्रन, पी-एच.डी. एडु, कुर. यूनि. 1985, इन फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, 1983-88, वाल्यूम-।।, एन.सी.ई.आर. टी., दिल्ली, 1999

स्टींशन, एम. एंड व्हाइटमायर, के. (1991), सैल्फ-प्रसेप्शन आफ सोशल रिलेशनशिप एमंग हेयरिंग एम्पायर्ड एडोलेसेंट इन इंग्लेंड, जर्नल आफ द ब्रिटिश एसोशिएशन आफ टीचर्स आफ द डीफ, 15, 104-114

थॉमस, एन.के. माइकल, एस.एस. एंड कोथली, डब्ल्यू. (1996), सेल्फ-प्रसेप्शन आफ सोशल रिलेशनशिप एमंग हेयरिंग एम्पायर्ड एडोलेसेंट इन इंग्लेंड, जर्नल आफ एजुकेशनल फिजियोलॉजी, 88, (1), 132-143

जॉन, पी., हॉन्शन, जे. एंड आस्पिक, डी. (2006), ए पॉजीटिव आउटलुक? द हाउसिंग नीड्स एंड एस्पिरेशन आफ वर्किंग एज पीपुल विद विजुअल इम्पेयरमेंट्स, डिसएबिलिटी एंड सोसायटी, वाल्यूम 21, (7), 661-675

सतपथी, एस. एंड सिंघल, एस. (2003), सोशल-इमोशनल एडजसमेंट आफ हेयरिंग-एम्पेयर्ड एंड नॉन-एम्पेयर्ड एडोलेसेंट-ग्रेड एंड जेंडर डिफरेंस, जर्नल आफ साइकोलॉजी रिसर्च, वाल्यूम 47, (1), 1-8

ज्योथिल, ए एंड रेड्डी, आई.वी.आर., (1966), ए कम्परेटिव स्टडी आफ एडजसमेंट एंड सैल्फ कान्सेप्ट आफ हेयरिंग एम्पेयर्ड एंड नार्मल चिल्ड्रन, जर्नल आफ साइकोलॉजी रिसर्च, वाल्यूम 40, (1), 6-10

सिंह, ए.के. एंड सेन गुप्ता, ए. (1987) मैनुअल फार हाई स्कूल एडजस्मेंट इन्वेंटरी (एच एस ए आई), अंकुर साइकालॉजी एजेंसी, लखनऊ

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता

श्वेता अग्रवाल* और **एन.पी.एस. चन्देल****

सभी संस्थानों की सफलता उनकी प्रबंधकीय व्यवस्था पर निर्भर करती है। प्रबंध से तात्पर्य उन संगठित, व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध क्रियाओं से है जिनके द्वारा भौतिक तथा मानवीय संसाधनों का उचित नियोजन, संगठन, समन्वय तथा नियंत्रण इस ढंग से किया जाये कि उद्देश्यों की प्राप्ति सर्वोत्तम रूप से सम्भव हो सके। प्रबंधकीय व्यवस्था बिना वित्त के अधूरी होती है। किसी भी व्यवसाय की सफलता वित्त की पर्याप्त पूर्ति तथा वित्त के प्रभावपूर्ण प्रबंध पर निर्भर करती है। वित्त के अभाव में अच्छी से अच्छी योजनाएँ केवल कागजों पर ही लिखी रह जाती हैं। वह क्रियान्वित नहीं हो पाती हैं। इन प्रबंध के आधार पर विद्यालयों में आय अर्थात् धन के स्रोत अलग-अलग होते हैं। वित्तीय प्रबंध के आधार पर जिन विद्यालयों को सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त होता है उन्हें अनुदानित विद्यालय तथा ऐसे विद्यालय जो विद्यार्थियों के द्वारा प्राप्त आय पर ही अपने वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था करते हैं वह गैर-अनुदानित विद्यालय कहलाते हैं। इसके परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रबंध तंत्रों द्वारा संचालित विद्यालयों (अनुदानित तथा गैर-अनुदानित विद्यालयों) के मानवीय तथा भौतिक संसाधनों की व्यवस्था में भी अंतर दिखाई दे सकता है। इन संसाधनों के परस्पर अंत:क्रियाओं के परिणाम स्वरूप ही विद्यालयी वातावरण का निर्माण होता है। इस वातावरण में प्रधानाचार्य, शिक्षक, विद्यार्थी व अन्य कर्मचारी अनेक क्रियायें संपादित करते हैं।

शिक्षक के द्वारा की जाने वाली इन सब गतिविधियों का क्रियाकलापों को सम्मिलित रूप में शिक्षण-अधिगम व्यवहार के द्वारा संबोधित किया जाता है। शिक्षक

* शोधार्थी, शिक्षा संकाय, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा, उत्तर प्रदेश
** रीडर, शिक्षा संकाय, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा, उत्तर प्रदेश

के सामान्य तथा कक्षागत क्रियाकलाप शिक्षक व्यवहार की ओर संकेत करते हैं और इन क्रियाकलापों पर शिक्षक प्रभावशीलता आधारित होती है। इस व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक के प्रति अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रतिक्रियायें प्रदर्शित की जाती हैं। वह प्रतिक्रियायें शिक्षक की प्रभावशीलता को दर्शाती हैं। शिक्षक की प्रभावशीलता में उसकी शिक्षा तथा सामान्य व तात्कालीन ज्ञान, प्रेरित करने की योग्यता, शिक्षण कौशल, व्यवसाय से संबंधित ज्ञान, पाठ्य सहगामी क्रियाओं का ज्ञान, कक्षा-कक्ष प्रबंध की योग्यता, समाज एवं विद्यालयों के अन्य सदस्यों के साथ आपसी मेल मिलाप का स्वभाव, संवेगात्मक रूप से स्थिर, सलाह व निर्देशन की योग्यता, नैतिक रूप से कुशल तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व को समाहित किया जाता है। इन सब क्रियाओं के प्रति विद्यालय के प्राचार्य, साथी समूह, स्वयं शिक्षक एवं विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं को अमुक शिक्षक की प्रभावशीलता के रूप में प्रेक्षित किया जाता है। शिक्षक की प्रभावशीलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह (शिक्षक) अपने शिक्षण व्यवसाय से किस सीमा तक संतुष्ट हैं क्योंकि संतुष्ट शिक्षक ही अपने विद्यार्थियों और समाज के प्रति न्याय कर सकता है। संतुष्ट शिक्षक से अभिप्राय ऐसे शिक्षकों से है जो अपनी योग्यताओं के आधार पर शिक्षण व्यवसाय से संबंधित परिस्थितियों व सुविधाओं को प्राप्त करने के कारण शिक्षण कार्य में संतुष्टि का अनुभव करते हैं। शिक्षण कार्य के आन्तरिक एवं बाह्य कारक (कार्य से प्राप्त होने वाले स्वास्थ्य व मनोरंजन के लिए भ्रमण, नियुक्ति का स्थान, कार्य की दशायें, लोगों के बीच आपसी सहयोग, प्रजातांत्रिक गुण, बुद्धि, सामाजिक दायरा, आय, वेतन भत्ता, जीवन के गुण एवं राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था) शिक्षकों को स्वयं के शिक्षण कार्य से प्राप्त होने वाली संतुष्टि को प्रभावित करते हैं। अत: स्पष्ट होता है कि शिक्षकों का कृत्य संतोष अप्रत्यक्ष रूप से उनके शिक्षण कार्य को प्रभावित करता है।

समस्या कथन

अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता का शिक्षकों के कृत्य संतोष पर प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन के उद्देश्य

1. अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की

शिक्षक प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

2. अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के कृत्य संतोष का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता का शिक्षकों के कृत्य संतोष पर प्रभाव का अध्ययन करना।
4. गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के शिक्षक प्रभावशीलता का शिक्षकों के कृत्य संतोष पर प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

1. अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के कृत्य संतोष में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता के आधार पर शिक्षकों के कृत्य संतोष में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
4. गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता के आधार पर शिक्षकों के कृत्य संतोष में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

अध्ययन की विधि

प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि द्वारा अध्ययन किया गया।

न्यादर्श का चयन

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध के निमित्त न्यादर्श चयन हेतु सम्भाव्य न्यादर्श प्रविधियों को अपनाते हुए आगरा नगर के उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद, इलाहाबाद द्वारा संचालित 34 उच्चतर माध्यमिक (12 अनुदानित एवं 22 गैर-अनुदानित) विद्यालयों के चयन हेतु यादृच्छिक न्यादर्श चयन की लॉटरी विधि को अपनाया गया। साथ ही प्रत्येक विद्यालय में शिक्षकों के चयन हेतु आकस्मिक चयन विधि व विद्यार्थियों के चयन हेतु

उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श चयन विधि के द्वारा अनुदानित विद्यालयों 144 शिक्षकों व 576 विद्यार्थियों तथा गैर-अनुदानित विद्यालयों के 252 शिक्षकों व 1008 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

उपकरण

शोध के संदर्भ में संबंधित प्रदत्तों के संकलन हेतु प्रमोद कुमार एवं डी.एन. मुथा (1999) द्वारा निर्मित टीचर इफैक्टिवनैस स्केल तथा अमर सिंह एवं टी.आर. शर्मा (1999) द्वारा निर्मित जॉब सैटिस्फैक्शन स्केल का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ

प्रस्तुत शोध अध्ययन के संदर्भ में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक सांख्यिकीय प्रविधियों में मध्यमान एवं मानक विचलन तथा निर्वचनात्मक सांख्यिकीय प्रविधियों में क्रांतिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं विवेचन

अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन

उपरोक्त उद्देश्य हेतु सर्वप्रथम प्रदत्त एकत्रित किए गए तत्पश्चात् अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता के मध यमान, मानक विचलन का क्रांतिक अनुपात ज्ञात किए गए जिन्हें तालिका-1 में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका-1 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता व इसके विविध क्षेत्रों एवं उपक्षेत्रों में सांख्यिकीय रूप से 0.01 सार्थकता स्तर पर तथा केवल व्यक्तित्व क्षेत्र के संदर्भ में 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक अन्तर है। अत: स्पष्ट होता है कि अनुदानित विद्यालयों के शिक्षक शैक्षिक क्षेत्र (सूचना स्रोत, शिक्षण कौशल उपक्षेत्र), व्यावसायिक क्षेत्र (पाठ्य सहगामी क्रियायें, व्यावसायिक ज्ञान), सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक तथा व्यक्तित्व क्षेत्र के संदर्भ में गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों की अपेक्षा

तालिका-1

अनुदानित एवं गैर अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात

शिक्षक प्रभावशीलता के क्षेत्र	शिक्षक प्रभावशीलता के उपक्षेत्र	अनुदानित विद्यालय		गैर-अनुदानित विद्यालयक्रांतिक		सार्थकता अनुपात df=395	स्तर
		म. n=144	मा.वि.	म. n=252	मा.वि.		
शैक्षिक क्षेत्र	सूचना स्रोत	13.15	2.87	12.25	3.49	5.8973	< 0.01
	प्रेरणादाता	12.63	3.26	13.61	3.52	6.1457	< 0.01
	शिक्षण कौशल	23.44	4.39	21.97	5.97	5.7705	< 0.01
	कुल शैक्षिक क्षेत्र	49.22	8.61	47.83	10.12	3.0967	< 0.01
व्यावसायिक क्षेत्र	पाठ्य सहगामी क्रियायें	10.42	2.71	9.6	2.36	7.0121	< 0.01
	व्यावसायिक ज्ञान	20.05	3.62	18.34	5.03	7.9802	< 0.01
	कक्षा-कक्ष प्रबंध	13.13	2.7	14.37	2.61	10.0336	< 0.01
	कुल व्यावसायिक क्षेत्र	43.59	6.17	42.31	7.29	3.9689	< 0.01
सामाजिक क्षेत्र		39.69	5.12	36.36	7.16	10.9724	< 0.01
संवेगात्मक क्षेत्र		27.67	4.32	26.53	6.08	4.3955	< 0.01
नैतिक क्षेत्र		38.56	4.36	37.42	8.78	3.2483	< 0.01
व्यक्तिक क्षेत्र		42.78	6.4	42.34	7.34	1.3378	< 0.05
कुल शिक्षक प्रभावशीलता		241.5	27.14	232.8	33.43	5.9513	< 0.01

उच्च स्थान प्रेक्षित करते हैं। सुन्दरराजन एवं श्रीनिवासन (1993), पॉल एवं कुमार (2003) तथा कपूर (2007) के अध्ययनों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। सम्भवत:

अनुदानित विद्यालयों में प्राप्त होने वाले साधन, समय-समय पर आयोजित होने वाली संगोष्ठियाँ, नियुक्ति के दौरान उच्च प्रभावशीलता वाले शिक्षकों के चयन की प्राथमिकता आदि के कारण भी इन विद्यालयों के शिक्षक अधिक प्रभावशाली होते हैं अर्थात इन विद्यालयों के शिक्षक उपयुक्त शिक्षण विधि, स्पष्ट रूप से विषय वस्तु प्रस्तुतीकरण, प्रभावकारी अभिव्यक्ति, श्यापट्ट का प्रयोग, यथावश्यक उपचारात्मक विधियों का प्रयोग तथा पाठ समाप्ति पर पाठ की समीक्षा करने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करने के साथ ही इन विद्यालयों के शिक्षकों में तर्कपूर्णता, समस्या समाधान का ज्ञान, अनुभव, योग्यतायें, अन्य ज्ञानवान व्यक्तियों से संबंध व उनके मध्य सम्प्रेषण तथा शिक्षा मनोविज्ञान का उच्च स्तर प्रेक्षित करने की प्रवृत्ति अधिक होती है, जबकि गैर-अनुदानित विद्यालयों में उक्त क्रियायें तुलनात्मक रूप में कम होती हैं जिसका सम्भावित कारण इन विद्यालयों में कम योग्यता वाले शिक्षकों की भी नियुक्ति हो जाना हो सकता है। साथ ही इन विद्यालयों के शिक्षकों की नियुक्ति में स्थाईत्व की कमी भी होती है, परन्तु प्रेरणादाता तथा कक्षा-कक्ष प्रबंध उपक्षेत्र के संदर्भ में अनुदानित विद्यालयों की अपेक्षा गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षक अधिक उच्च स्तर प्रदर्शित करते हैं। सम्भवत: गैर-अनुदानित विद्यालयों में शिक्षक प्रेरणा प्रदान करने हेतु विद्यार्थियों को योग्य उत्प्रेरणा अवसर; पुरस्कार का अधिकतर व दण्ड का न्यूनतम प्रयोग; विद्यार्थियों की पाठ में रुचि का विकास तथा नियमितता पर जोर देने जैसी प्रवृत्तियों को अनुदानित विद्यालयों की तुलना में अधिक प्रेक्षित करते हैं। साथ ही इन विद्यालयों के शिक्षकों की नियुक्ति में स्थाईत्व की कमी होने के कारण इन विद्यालयों में अधिकांशत: वर्तमान में प्रशिक्षित शिक्षक ही शिक्षण कार्य करते हैं जिसके कारण उन्हें नवीन कक्षा-कक्ष प्रबंध के तरीकों का अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान होता है।

अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के कृत्य संतोष का तुलनात्मक अध्ययन

उपरोक्त उद्देश्य हेतु सर्वप्रथम प्रदत्त एकत्रित किए गए तत्पश्चात् अनुदानित एवं गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के कृत्य संतोष के मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात ज्ञात किए गए जिन्हें तालिका-2 में प्रस्तुत किया गया है-

तालिका-2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अनुदानित एवं गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों के कृत्य संतोष एवं इसके विविध कारकों व उपकारकों में 0.01 सार्थकता

तालिका-2

अनुदानित एवं गैर अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के संतोष के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात

कृत्य संतोष के कारक	कृत्य संतोष के उपकारक	अनुदानित विद्यालय		गैर-अनुदानित विद्यालयक्रांतिक		सार्थकता अनुपात df=395	स्तर
		म. n=144	मा.वि.	म. n=252	मा.वि.		
आंतरिक कारक	मूलभूत कारक	13.7	2.64	13.25	3.51	1.3508	< 0.05
	भाववाचक कारक	14.4	3.6	12.96	3.92	3.6087	< 0.01
	कुल आंतरिक कारक	27.99	5.34	26.2	6.59	2.7726	< 0.01
बाह्य कारक	मनो-सामाजिक कारक	21.44	3.99	18.38	5.02	6.2404	< 0.01
	आर्थिक कारक	7.73	2.02	3.14	2.2	20.5321	< 0.01
	सामुदायिक/राष्ट्रीय वृद्धिकारक	13.98	2.95	12.78	4.05	3.0974	< 0.01
	कुल बाह्य कारक	43.15	6.77	34.31	9.48	9.8265	< 0.01
कुल कृत्य संतोष		71.14	10.49	60.51	15.11	7.4564	< 0.01

स्पर पर तथा आंतरिक कारक के मूलभूत उपकारक के संदर्भ में 0.05 सार्थकता स्तर सार्थक अन्तर होता है। इस तथ्य की पुष्टि बारूह, (2004) एवं मेहरोत्रा (2003) के शोध अध्ययनों से भी होती है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनुदानित विद्यालयों के शिक्षक स्वास्थ्य, मनोरंजन के अवसर, सुविधानुसार नियुक्ति का स्थान, परिवार की

जिम्मेदारियों हेतु दिया जाने वाला समय, एक दूसरे को दिया जाने वाला सहयोग, कार्य की प्रजातांत्रिकता व समाज में अपने व्यवसाय के स्थान, विस्तृत सामाजिक क्षेत्र, वांछनीय जीवनयापन के ढंग, आदतें एवं अभिरुचियाँ, योग्यतानुसार कार्य भार, आगे बढ़ने हेतु अनेक अवसर प्रदान करने, जीवन दशा उत्तम करने वाला, स्वतंत्रता तथा स्वयं निर्णय व प्रेरणा लेने के प्रावधान के आधार पर अपने व्यवसाय से गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट होते हैं।

अनुदानित विद्यालयों के शिक्षक पेंशन, नौकरी से अवकाश प्राप्त करने पर मिलने वाले लाभों; चिकित्सा, आवास, यात्रा आदि मिलने वाली सुविधाओं के कारण भी गैर-अनुदानित विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट होते हैं, क्योंकि अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों को उपर्युक्त सभी सुविधायें उपलब्ध कराने के परिप्रेक्ष्य में सरकार द्वारा ध्यान दिया जाता है, जबकि गैर-अनुदानित विद्यालयों में शिक्षकगण सालों साल अस्थाई रूप से नियुक्त रहते हैं जिससे उन्हें मिलने वाली अनेक सुविधाएं तो स्वत: ही समाप्त हो जाती हैं, साथ ही इनका वेतनमान भी कम होता है क्योंकि इन विद्यालयों के समस्त व्यय का वहन विद्यार्थियों से प्राप्त शुल्क तथा अन्य स्रोतों से ही होता है जिससे उक्त उपकारक के परिप्रेक्ष्य में यह असंतुष्ट अनुभव करते हैं।

अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता का शिक्षकों के कृत्य संतोष पर प्रभाव का अध्ययन

उपरोक्त उद्देश्य हेतु सर्वप्रथम प्रदत्त एकत्रित किए गए तत्पश्चात् अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता के स्तरों के आधार पर शिक्षकों के कृत्य संतोष के मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात ज्ञात किए गए जिन्हें तालिका-3 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-3 के अवलोकन से विदित होता है कि अनुदानित विद्यालयों के उच्च एवं मध्यम तथा उच्च एवं निम्न स्तर की शिक्षक प्रभावशीलता के शिक्षकों के कृत्य संतोष के मध्य क्रमश: 0.01 तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक अन्तर होता है। संभवत: कहा जा सकता है कि अनुदानित विद्यालयों में उच्च स्तर की शिक्षक प्रभावशीलता रखने वाले शिक्षकों का कृत्य संतोष शिक्षक प्रभावशीलता के प्रत्येक क्षेत्र के उच्च होने के कारण सकारात्मक रूप से प्रभावित होता है, जबकि मध्यम एवं निम्न स्तर की

तालिका-3

अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता के स्तरों के आधार पर शिक्षकों के कृत्य संतोष के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात

शिक्षक प्रभावशीलता के स्तर	शिक्षकों का कृत्य			df	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
	म.	मध्यमान	मा.वि			
उच्च	12	81.42	4.88	127	3.6897	< 0.01
मध्यम	116	70.18	9.99			
मध्यम	116	70.18	9.99	131	0.0710	< 0.05
निम्न	16	70.38	11.42			
उच्च	12	81.42	4.88	27	2.6010	< 0.05
निम्न	16	70.38	11.42			

शिक्षक प्रभावशीलता प्रेक्षित करने वाले अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों के कृत्य संतोष में 0.05 सार्थकता स्तर पर भी सार्थक अन्तर नहीं होता है जिससे विदित होता है कि उच्च शिक्षक प्रभावशीलता प्रदर्शित करने वाले शिक्षक स्वयं के शिक्षण कार्य से संतुष्ट होते हैं, जबकि मध्यम एवं निम्न शिक्षक प्रभावशीलता प्रेक्षित करने वाले शिक्षकों के कृत्य संतोष में लगभग समानता होती है।

गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता का शिक्षकों के कृत्य संतोष पर प्रभाव का अध्ययन

उक्त उद्देश्य हेतु प्रदत्त एकत्रीकरण के पश्चात् गैर-अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक प्रभावशीलता के स्तरों के आधार पर शिक्षकों के कृत्य संतोष के मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात ज्ञात किए गए जिन्हें तालिका-4 में प्रस्तुत किया गया है:

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि गैर-अनुदानित विद्यालयों के उच्च एवं मध्यम स्तर की शिक्षक प्रभावशीलता वाले शिक्षकों के कृत्य संतोष में 0.05

तालिका-4

गैर अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता का शिक्षकों के कृत्य संतोष पर प्रभाव का अध्ययन

शिक्षक प्रभावशीलता के स्तर	शिक्षकों का कृत्य			df	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
	म.	मध्यमान	मा.वि			
उच्च	12	81.42	4.88	127	3.6897	< 0.01
मध्यम	116	70.18	9.99			
मध्यम	116	70.18	9.99	131	0.0710	< 0.05
निम्न	16	70.38	11.42			
उच्च	12	81.42	4.88	27	2.6010	< 0.05
निम्न	16	70.38	11.42			

सार्थकता स्तर पर सार्थक अन्तर होता है, जबकि मध्यम एवं निम्न तथा उच्च एवं निम्न स्तर की शिक्षक प्रभावशीलता वाले शिक्षकों के कृत्य संतोष के मध्य 0.05 सार्थकता स्तर पर भी सार्थक अन्तर नहीं होता है। अत: कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षक प्रभावशीलता स्तर वाले शिक्षकों का कृत्य संतोष इस कारण से अधिक हो सकता है कि उन्हें विद्यालय व कक्षा-कक्ष में स्वयं की उच्च प्रभावशीलता के कारण उच्च स्थान प्राप्त होता है। साथ ही निम्न प्रभावशीलता वाले शिक्षकों के कृत्य संतोष का स्तर अपेक्षाकृत इस कारण से मध्यम हो सकता है कि इन शिक्षकों को अपनी अपेक्षाओं से कहीं अधिक उच्च स्थान एवं आय प्राप्त हो जाती है जिससे वह कम में भी संतुष्ट हो जाते हैं, जबकि मध्यम शिक्षक प्रभावशीलता प्रेक्षित करने वाले शिक्षकों को न तो स्वयं ही अपेक्षाओं के अनुसार विद्यालय में स्थान मिल पाता है और न ही आय, जिससे इनके कृत्य संतोष का स्तर तुलनात्मक रूप से न्यून ही रहता है।

निष्कर्षों के आधार पर दिए गए सुझाव

प्रस्तुत शोध अध्ययन के परिणाम इंगित करते हैं कि-

1. अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता उच्च मध्यम रूप से प्रभावशाली तथा गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता मध्यम रूप से प्रभावशाली होती है। अत: अनुदानित एवं गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों की प्रभावशीलता में सुधार की आवश्यकता है।
2. अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों का कृत्य संतोष मध्यम तथा गैर-अनुदानित विद्यालयों के निम्न स्तर का होता है। अत: मुख्य रूप से गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों के कृत्य संतोष में सुधार की आवश्यकता है।
3. उच्च स्तर की शिक्षक प्रभावशीलता होने वर वह शिक्षकों के कृत्य संतोष को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। अत: मुख्य रूप से गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों के कृत्य संतोष के स्तर को बढ़ाने के लिए इन विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता के स्तर को उच्च करने की आवश्यकता है।

व्यावहारिक शैक्षिक सुझाव

सरकार, प्रशासकों एवं प्रधानाचार्यों हेतु सुझाव

- दोनों प्रकार के (मुख्यत: गैर-अनुदानित) विद्यालयों के शिक्षकों के शिक्षण कौशल में विकास व उद्धार के लिए सरकार विशेष कार्यक्रमों एवं संगोष्ठियों का आयोजन करें तथा इसमें भाग लेने वाले शिक्षकों को इस दौरान का वेतन तथा यात्रा भत्ता तथा दैनिक भत्ता भी प्रदान करें। इन संगोष्ठियों के दौरान शिक्षकों को व्यावसायिक ज्ञान, पाठ्य सहगामी क्रियाओं, कक्षा-कक्ष प्रबंध तथा शिक्षक व्यवहार से संबंधित आवश्यक तथ्यों का भी ज्ञान प्रेक्षित किया जाये जिससे शिक्षकों की प्रभावशीलता के साथ उनके व्यवहार में भी विकास हो सके।
- गैर-अनुदानित विद्यालयों हेतु सरकार एवं प्रशासक धन की कमी को पूरा करने के लिए अर्थात शिक्षकों को आर्थिक सुविधायें प्रदान करने के लिए सरकारी/अनुदानित विद्यालयों से उनकी इमारत को किराये पर ले सकते हैं। इसके लिए एक ही इमारत में दो पारी में एक समय पर सरकारी/अनुदानित विद्यालय तथा दूसरे समय में गैर-अनुदानित विद्यालय चलाया जा सकता है।

- प्रधानाचार्यों एवं शिक्षकों को बतायें कि एक दूसरे की निन्दा से स्वयं का विकास नहीं हो सकता अपितु इसके लिए आपस में मित्रता व भातृत्व के संबंधों को विकसित करना होगा। साथ ही विद्यार्थियों के अभिभावकों में जाति, सामाजिक स्तर व आर्थिक स्थिति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करें। इससे वह अपनी प्रभावशीलता को लोकप्रियता को बढ़ावा दे सकते हैं।
- सरकार एवं प्रशासक प्रमुख रूप से गैर-अनुदानित विद्यालयों में शिक्षकों के वेतनमान, पेंशन, चिकित्सा, आवास, यात्रा आदि सुविधाओं को उपलब्ध करायें जिससे उच्च योग्यता वाले शिक्षक गैर-अनुदानित विद्यालयों से आकर्षित हो सकें और इनमें योग्य शिक्षकों की संख्या बढ़ सके। परिणामत: विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च हो सके।

अध्यापकों हेतु सुझाव

- दोनों प्रकार के विद्यालयों में शिक्षक विचारों का आदान-प्रदान खुलेपन से करें तो शिक्षकों के मध्य सौहार्द्रपूर्ण संबंध बन सकेंगे, जिससे शिक्षकों का एक दूसरे की योग्यता में विश्वास बढ़ेगा तथा वे वरिष्ठों द्वारा प्रदत्त ज्ञान को स्वीकार भी कर सकेंगे।
- मुख्यत: गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षक विद्यार्थियों को योग्य उत्प्रेरणा अवसर; पुरस्कार का अधिक प्रयोग तथा सम्प्रेषण, विषय-वस्तु व श्रव्य दृश्य सामग्रियों के उचित एवं उपयुक्त प्रयोग से विद्यार्थियों की पाठ में रुचि का विकास करें, जिससे विद्यार्थी अपने लक्ष्य की ओर प्रेरित हो सकें।
- दोनों प्रकार के विद्यालयों के शिक्षक शिक्षिकोचित वेशभूषा एवं शिष्ट भाषा का प्रयोग, विद्यालय के दैनिक कार्यों में वांछित सहयोग, नियमित एवं समय का पाबन्द, व्यवसाय के प्रति निष्ठा, रूचि, पूर्ण जिम्मेदारी व अनुशासन प्रेक्षित करें, जिससे वह विद्यार्थियों के सामने एक आदर्श एवं प्रभावकारी शिक्षक बन सकेंगे और विद्यार्थियों पर अपनी अमिट छाप छोड़ सकेंगे।
- मुख्य रूप से गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षक स्वयं के व्यक्तित्व के विकास के लिए आत्म विश्वासी, सृजनशील, उत्तरदायी, अन्त:दृष्टि, कल्पनाशील, समायोजी, भावनात्मक स्थिरता, स्फूर्तिमय, क्रियाशीलता,

प्रसन्नचित्तता, विनोदप्रियता, मिशनरी उत्साह आदि प्रवृत्तियों को स्वयं के व्यवहार में समावेशित करें।

अत: परिणामस्वरूप कहा जा सकता है कि सरकार/प्रशासक तथा शिक्षकों के द्वारा उक्त सभी सुझावों को माना जाए तो अनुदानित एवं गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता तथा कृत्य संतोष के स्तर को उनकी वर्तमान स्थिति से कहीं ऊपर ले जाया जा सकेगा। साथ ही सभी स्तर की प्रभावशीलता प्रेक्षित करने वाले शिक्षकों के कृत्य संतोष के स्तर को भी उच्च किया जा सकेगा।

संदर्भ

अकलोग, फेनॉट बरहान (2005) टीचर जॉब सेटिफैक्शन एंड डिस्सेटिफैक्शन : एन एम्पीरिकल स्टडी ऑफ अरबन टीचर इन इथोपिया, डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, 66(5), पी 1565 ए

बेस्ट, जे.डब्ल्यू (1978), रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्ली: प्रेन्टिस हॉल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, पी-264-268

ब्रॉडेनी, एस.बी. (1994) द रिलेशनशिप बिटवीन स्टूडेंट एचीवमेंट्स, स्टूडेंट एटीट्यूट एंड स्टूडेंट परसैप्शन आफ टीचर इफैक्टिवनैश एंड द यूज ऑफ जर्नल एज के लर्निंग टूल इन मैथेमैटिक्स, पीएच.डी. द यूनिर्वसिटी आफ सदर्न मिसिसिपी। रिफ. इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, वाल्यूम 54, नं. 8, फरवरी 1994, पी. 2886 ए

बुच एम.बी. (सम्पादित) (1983-89) सिक्स्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन (वॉल्यूम 1 व 2), नई दिल्ली:एन.सी.ई.आर.टी

गरेट, एच.ई. (1985) स्टेटिस्टिक इन फिजियोलॉजी एंड एजुकेशन, बंबई: वकील्स फीफर एंड सिमॉन लि.

गुप्ता, मधु (2008) प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की प्रभावशीलता का अध्ययन, एस.एस. श्रीवास्तव (संपादक) भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ : इंडियन इन्स्टीट्यूट आफ एजूकेशनल रिसर्च, 27(1), पृ. 31-35

गुप्ता, सुशील प्रकाश (1995) ए कारलेशनल स्टडी आफ टीचर जॉब सैटीसफैक्शन एंड दियर टीचर आफ सेकण्डरी स्कूल, एस.के. मोडक (एड.) इन क्वेस्ट आफ भारतीय शिक्षण मुंबई : बी.एस.एम. प्रकाशन, पी. 15-22

कपिल, एच.के. (1986) सांख्यिकीय के मूल तत्व, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर

कीफर, पॉल एन्ड्रव (2008) जॉब सैटीसफैक्शन इन यूनियन एंड नॉन यूनियन पब्लिक स्कूल्स

एंड इट्स इफैक्ट ऑन एकेडेमिक एचीवमेंट, डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, 69(2), पी. 453ए

कृष्णनन, एस. संस्थान (1995) इम्पैक्ट आफ टीचर्स सेक्स, एस.ई.एस. एंड लोकल आन टीचर इफैक्टिवनैश, डा. जी.एस. कोशे, द प्रोग्रेस आफ एजूकेशन, पूणे : विद्यार्थी गृह प्रकाशन 69(8), पी. 146

मेहरोत्रा, अंजू (2003) ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ लीडरशिप स्टाइल आफ प्रिंसिपल इन रिलेशन टू जॉब सैटिस्फैक्शन आफ टीचर्स एंड आग्रेनाजेशनल क्लामेट इन गर्वनमेंट एंड प्राइवेट सीनियर सेकेण्डरी स्कूल आफ दिल्ली, दिल्ली जामिया मिलिया इस्लामिया, ए सेंट्रल यूर्निवसिटी

पांडया भूपेन्द्र (2007) ए कॉरेलेशन स्टडी बिटवीन टीचर्स इफैक्टिवनैस एंड जॉब सैटिस्फैक्शन, एस.के. मोदक (एड.) इन क्वैस्ट आफ भारतीय शिक्षण मुंबई : बी.एस.एम. प्रकाशन, पी. 5–8

प्रकाशम, डी. (1986) ए स्टडी आफ टीचर्स इफैक्टिवनैस एज ए फंक्शन ऑफ स्कूल आग्रेनाइजेशनल क्लाइमेट एंड टीचिंग कंपेटेंसी, पी–एच.डी. एडू. आरएसयू

सिंह एस.के. (1986) स्टडी सम ऑफ द पर्सनालिटी वैरीएबल रिलेटेड टू टीचिंग इफैक्टिवनेस, बुच सेकण्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन 2, 411

स्टालिंग डवाने (2008) पब्लिक स्कूल फसिलिटी एंड टीचर जॉब सैटिसफैक्शन डिजरटेशन अब्स्ट्रेक्ट इंटरनेशनल, 69(2), पी. 456ए

सुन्दराजन, एस. एंड एस. राजशेखर, (1993) हायर सेकण्डरी स्टूडेंट्स परसैप्शन आफ द इफैक्टिवनैश आफ दियर कैमिस्ट्री टीचर्स एंड दियर एटीट्यूट टूवार्ड्स द स्टडी आफ कैमिस्ट्री, डी. राजा गणेशन (संपा) एक्सपरीमेंट इन एजुकेशन, चेन्नै: थिरू पी.सी. वैद्यनाथन, 21(7), पी.171–175

यादव, अवधेश कुमार, (2007) सरकारी तथा गैर–सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन, सुभाष शर्मा (संपा) परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली: न्यूपा, 14(2), पृ. 103–107

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षकों का तकनीकी एवं सांस्कृतिक सशक्तिकरण

भरत टाक*

शिक्षा ही गतिशील, संवेदनशील, संस्कारवान एवं सुसामाजिक नागरिकों का निर्माण करके राष्ट्र को सम्मुनत बनाती है। विद्यालय में बालकों को शिक्षा प्रदान करने का कार्य शिक्षक करता है। इस प्रकार शैक्षिक प्रक्रिया के अन्तर्गत शिक्षक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय स्थान है। शिक्षक ही एक ऐसा मानवीय साधन है जो किसी भी पाठ्यवस्तु व सहायक सामग्री का प्रभावी उपयोग कर बालकों में वांछित परिवर्तन ला सकता है तथा शिक्षार्थियों के विकास से सम्बन्धित समस्त प्रक्रिया का प्रभावशाली सम्पादन एक शिक्षक की योग्यता व कुशलता पर ही आश्रित होता है।

यह विदित है कि विद्यालयों में जो शिक्षक बालकों को ज्ञान एवं कौशल प्रदान करते हैं वे सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करके, एक निपुण शिक्षक के रूप में शिक्षण कार्य करके अपनी महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान कर देश की भावी पीढ़ी को तैयार कर रहे हैं। लेकिन आज के इस तीव्र गति से परिवर्तनशील युग में, भविष्य के परिदृश्य में, शिक्षकों के सशक्तिकरण की विशेष आवश्यकता महसूस की जा सकती है। अपने विद्यार्थियों को इस सतत् एवं तेज गति से परिवर्तनशील संसार के साथ-साथ चलने एवं सशक्त रूप से तैयार करने हेतु , भविष्य के नागरिकों के तीव्र विकास एवं उनकी प्रगति हेतु, हमें ऐसे शिक्षकों को तैयार करना होगा जो कि भावी इक्कीसवीं शताब्दी की एकदम नई सामाजिक व्यवस्था में अनुकूल रूप से समायोजित होने हेतु , अपने छात्रें की अपेक्षाओं की पूर्ति कर सकें। साथ ही साथ भारतीय-संस्कृति के शाश्वत मूल्यों को व्यावहारिक रूप में अपना सकें।

* सहायक प्रोफेसर, शाह गोवर्धनलाल काबरा शिक्षक महाविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

अत: इस उद्देश्य हेतु भविष्य में सार्थक शिक्षण कार्य प्रदान करने हेतु , शिक्षकों को अपना सतत् व्यावसायिक विकास करते रहना होगा। अध्यापकों की विद्यार्थियों के प्रति जवाबदेही अधिक होगी। अत: शिक्षकों को सम्प्रेषण कौशलों से पूर्णरूपेण सुसज्जित होना चाहिए। प्रवृत्ति से वह नवाचारप्रिय हो तथा अपने विषय से सम्बन्धित नवीनतम ज्ञान से उसे युक्त रहना होगा।

इस सन्दर्भ में भविष्य के शिक्षकों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण विश्व स्तर की वास्तविकताओं की दृष्टि से सार्थक होना चाहिए। शिक्षण – प्रशिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत, सेवापूर्व एवं सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अध्ययन–अध्यापन की नवीनतम पद्धतियों का विकास किया जाना तथा नवीनतम शिक्षण कौशलों का अर्जन किया जाना अपेक्षित है। इक्कीसवीं सदी ज्ञान और तकनीकी पर आधारित तेजी से बदलते हुए समाज को प्रस्तुत करेगी। इस हेतु शिक्षक को ज्ञान–पिपासा, सत्य की खोज तथा प्रयोग हेतु जिज्ञासा वृत्ति को, अपने शिक्षार्थियों में विकसित करने का दायित्व निभाना होगा। शिक्षक को नवाचारों का विकास व प्रयोग करना होगा। इस रूप में, वर्तमान संदर्भों में शिक्षक सशक्तिकरण के महत्वपूर्ण आयाम यथा मूल्यपरक शिक्षा, आजीवन सीखने की अवधारणा व राष्ट्रीय पहचान को सशक्त करना, सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, वैश्वीकरण के प्रभाव के प्रति सक्रिय रूप से प्रतिक्रिया, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी की चुनौतियों का सामना करना, शिक्षा को जीवन–कौशलों से जोड़ना, समुदाय के सन्दर्भ में शिक्षा, समस्या समाधान उपागम, शिक्षण विधियों मे नवीन परिवर्तन, सम्प्रेषण कौशलों का विकास, कम्प्युटर एवं इन्टरनेट का व्यापक प्रयोग भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों के अनुरूप शिक्षा आदि के रूप में प्रकट होते हैं।

अत: शिक्षकों के सशक्तिकरण के संदर्भ में, भावी शिक्षकों की शैक्षिक व व्यावसायिक तैयारी में अभिवृद्धि के लिए प्रशिक्षण महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम के पुनर्निर्माण की महती आवश्यकता है तभी शिक्षक भविष्य हेतु सशक्त हो सकेगा तथा अपने बालकों की आवश्यकताओं व जिज्ञासाओं को पूरा कर सकेगा।

इस प्रकार वर्तमान संदर्भ में शिक्षक सशक्तिकरण के कुछ महत्वपूर्ण आयामों की विवेचना निम्नलिखित पंक्तियों में की जा सकती है :

(अ) सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक में क्रान्ति एवं शिक्षक सशक्तिकरण

विश्व में, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक के क्षेत्र में पिछले एक दशक में आई क्रांति ने अब अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया है। बाह्य देशों के दैनिक जीवन में कम्प्यूटर व

इन्टरनेट का व्यापक प्रयोग इसका स्पष्ट प्रमाण है। आज एक छोटे से कम्प्यूटर का पुश बटन दबाकर विश्व के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। आज पूरे विश्व में औद्योगिक रूप से विकसित समाज एक ऐसे सूचना समाज में परिवर्तित होता जा रहा है जो कम्प्यूटर के बिना एक सैकेण्ड भी जीवित नहीं रह सकता। सूचना एवं सम्प्रेषण क्रांति ने उपभोक्ता सुविधाएँ जुटाने के साथ-साथ अब शिक्षा और प्रशिक्षण के क्षेत्र में भी मजबूती से कदम रख लिया है। सम्प्रेषण तकनीक में आ रहे ताजा बदलावों ने पढ़ने और सीखने के पारम्परिक तौर-तरीकों में बदलाव किया है। इसका महत्वपूर्ण श्रेय 'इन्टरनेट' को है।

वर्तमान समय में, हमारे देश में जो परम्परागत सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उनके आध ाार पर हमारे शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों को पूरा करना कठिन प्रतीत होता है और इस कार्य को सफल करने में सूचना प्रौद्योगिकी हमारी मदद कर सकती है। यूनेस्को ने सूचना प्रौद्योगिकी को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''वैज्ञानिक, तकनीकी तथा इंजीनियरी जैसे विधाएँ तथा व्यवस्थापन तकनीक का प्रयोग सूचना को निष्पादित, संशोधित तथा प्रयोग करने के लिए कम्प्यूटर (संगणक) इत्यादि का प्रयोग करते हुए, मानव तथा मशीन के बीच होने वाली क्रिया को, जोकि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं से जुड़ी हो, जब इलेक्ट्रोनिक आयाम प्रदान किया जाता है तब इस एकजुटता को ही सूचना प्रौद्योगिकी का नाम दिया जाता है।'' हाल ही में हुए विभिन्न आविष्कारों जैसे कम्प्यूटर, काम्पेक्ट डिस्क (सी.डी.), उपग्रह, लेजर तथा इन्टरनेट आदि ने सूचनाओं के आदान-प्रदान को अत्यधिक गति दी है।

औद्योगीकरण की तीव्र प्रगति के फलस्वरूप आज यह आवश्यक हो गया है कि छात्रों को व्यवसायिक पाठ्यक्रमों पर आधारित ज्ञान प्रदान किया जाए। यही कारण है कि विद्यालयी एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा के अंतर्गत कम्पोजिंग, फोटोग्राफी, कम्प्यूटर प्रबंध तकनीक आदि पाठ्यक्रमों का समावेश किया जा रहा है।

इक्कीसवीं शताब्दी और कम्प्यूटर के इस युग में हमारी भावी युवा पीढ़ी, जोकि राष्ट्र की आधारशिला है, को शिक्षित करने वाले शिक्षकों की शैक्षिक व व्यावसायिक तैयारी में अभिवृद्धि हेतु प्रशिक्षण महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम का पुनर्निर्माण करना होगा। वर्तमान समय की मांग के अनुरूप अध्यापक शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीकी का प्रयोग आवश्यक है।

आज का विद्यार्थी हर क्षेत्र में सूचना तकनीकी का प्रभाव देखता है और यदि शिक्षा में इसका अभाव है तो उसे अपनी शिक्षा अधूरी जान पड़ती है। छात्रों की जानकारी बढ़ाने हेतु सूचना व संचार तकनीकी अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। अत: हमारे विद्यालयों में इस तकनीकी का प्रयोग अब अनिवार्य रूप से प्रारम्भ हो जाना चाहिए। विद्यालयों में उपयोग से पूर्व अध्यापकों को इसकी शिक्षा देनी होगी। अध्यापक शिक्षा के वर्तमान पाठ्यक्रमों में, कम्प्यूटर शिक्षा को अनिवार्य प्रश्न-पत्र के रूप में जोड़ा गया है। इसके अंतर्गत आधारभूत जानकारी के साथ-साथ संचालन, डेटा एण्ट्री, वेब डिजाइनिंग, इन्टरनेट का प्रयोग, सॉफ्टवेयर का विकास आदि सिखाया जाना चाहिए। अध्यापक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों के लिए, सूचना एवं संचार तकनीकी का ज्ञान आवश्यक है, तभी वे छात्र-अध्यापकों को प्रशिक्षित कर सकेंगे।

(ब) वैश्वीकरण का प्रभाव एवं शिक्षक सशक्तिकरण

मानव सभ्यता के तीव्र विकास के साथ-साथ वर्तमान समय मे विभिन्न क्षेत्रें में, विभिन्न देशों को परस्पर निर्भर बरना दिया है। वैश्वीकरण (अर्थात ग्लोबेलाईजेशन) स्वयं की अर्थव्यवस्था, संस्कृति, समुदाय आदि को विश्व समुदाय के लिए खोलना अथवा विश्व के अन्य देशों के साथ जोड़ना है। वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संसार की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं व समाज का समन्वय किया जाता है जिससे वस्तुओं व सेवाओं, सूचना प्रौद्योगिकी, पूंजी निवेश, शिक्षा, सांस्कृतिक आदान-प्रदान आदि का इनके बीच आपसी प्रवाह हो सके। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में विकास एवं प्रतिस्पर्धा साथ-साथ चलती है। आज हम देखते हैं कि शिक्षा का भी वैश्वीकरण हुआ है। आज हमारे देश को तीव्र गतिशील एवं परिवर्तनशील भौतिक, आर्थिक व सामाजिक पर्यावरण के साथ प्रभावी सामनजस्य बनाना आवश्यक हो गया है। देश की भावी युवा पीढ़ी को वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना करने व उसके योग्य बनने हेतु सामाजिक परिवर्तन के एक सक्रिय अभिकर्ता के रूप में शिक्षक की भूमिका एवं महत्व पहले से अधिक बढ़ गया है।

शिक्षक को शिक्षण व्यवसाय एवं अपने विषय से सम्बन्धित नवीनतम जानकारियाँ, विधियाँ, कौशलों, अभिवृत्तियों आदि को अद्यतन रखना होगा। उसे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने विषय से सम्बन्धित संगोष्ठियों, कार्यशालाओं व सम्मेलनों में सक्रिय

सहभागिता करनी होगी। उसे विषय से सम्बन्धित लेखों, पुस्तकों एवं शिक्षण सामग्रियों की रचना करते रहना होगा।

(स) शिक्षण कौशलों एवं सम्प्रेषण में दक्षता

आज की परिवर्तनशील परिस्थितियों में शिक्षक को विभिन्न शिक्षण कौशलों में पूर्णदक्षता प्राप्त कर एवं प्रभावी सम्प्रेषण तकनीकों को सीखकर एवं उन्हें शिक्षण कार्य में अपनाकर अपना सशक्तिकरण करना होगा। उसकी कक्षा ''शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया'' इस प्रकार की हो जिसमें छात्र एवं अध्यापक, छात्र एवं छात्र तथा छात्र एवं साधनों व पर्यावरण के बीच अर्थपूर्ण अन्त:क्रिया सम्भव हो सके। इस हेतु कक्षा में व्याख्यान विधि का बेहतर प्रयोग, समस्या समाधान उपागम को महत्व देना, प्रदर्शन विधि, समूह चर्चा, प्रश्न प्रविधि, विभिन्न शिक्षण सहायक सामग्रियों आदि सभी का उपयुक्त संशोधन, उपयोग एवं सम्मिश्रण उसे करना होगा ताकि बालकों हेतु अधिगम प्रक्रिया रोचक एवं सहभागितापूर्ण हो।

शिक्षण कार्य में भाषा का प्रयोग, सम्प्रेषण का एक विशिष्ट, प्रभावी एवं चुनौतीपूर्ण उपकरण है। इसको भी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। शिक्षकों को विद्यालय में शैक्षिक आवश्यकतानुसार एवं स्तरानुकूल हिन्दी, अंग्रेजी एवं मातृभाषा का अच्छा ज्ञान एवं प्रयोग हेतु प्रयास किए जाने चाहिए। विषय का ज्ञान देने एवं शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षकों को अपनी भाषा में शुद्धता, स्पष्टता, ओजस्विता, प्रवाहशीलता प्राप्त करने हेतु तथा लिखने का कौशल आदि पर दक्षता प्राप्त करनी होगी तभी उसका शिक्षण सशक्त हो सकेगा। इससे शिक्षक का स्वत: का सशक्तिकरण होगा तथा छात्रों का अधिगम प्रभावी एवं स्थायी हो सकेगा।

(द) भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों के अनुरूप शिक्षा

आज शिक्षक भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने हेतु अपना सशक्तिकरण अवश्य करें। वर्तमान शिक्षा को विशुद्ध व्यावसायिक अथवा मात्र जीविकोपार्जन का साधन न बनाकर भारतीय संस्कृति एवं उसके सार्थक मानवीय मूल्यों से समन्वित करना चाहिए। इसका उद्देश्य व्यक्ति में आध्यात्मिक चरित्र का ऐसा विकास करना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति का अवसर मिल सके और वह पूर्ण सामर्थ्य से राष्ट्र के उत्थान में भागीदार बन सके। 'सा विद्या या विमुक्तये' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम'

तथा 'विद्या ददाति विनयम' जैसे महान एवं शाश्वत भारतीय मूल्यों एवं उद्देश्यों की व्यापकता एवं महत्व को स्वीकारना होगा। इसके लिए शिक्षक को स्वयं एक आदर्श-चरित्र का उदाहरण बनना होगा तभी वह गुरू होने का गौरव पुनः प्राप्त कर सकेगा।

हमारी संस्कृति के विभिन्न मानवीय मूल्य यथा त्याग, सहानुभूति, भाईचारा, करुणा, सहयोग, विनयशीलता, कर्त्तव्यपरायणता, परोपकार, स्नेह, आत्मसन्तोष आदि मूल्यों को शिक्षक स्वयं अपनाकर अपने विद्यार्थियों में उनका आरोपण करके उन्हें सुसंस्कृत बनाए, क्योंकि इन आदर्श मूल्यों के प्रभाव से ही भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत के साथ पिछले हजारों वर्षों से अडिग खड़ा है। कोई भी राष्ट्र अपनी संस्कृति के शाश्वत एवं आदर्श मूल्यों तथा गुणों को त्याग कर ज्यादा दिनों तक अस्तित्व में नहीं रह सकता है। पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण देश की एकता, विकास व अस्तित्व हेतु घातक होगा।

अतः वर्तमान समय में यदि शिक्षक स्वयं को सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम रूप में प्रदर्शित करना चाहता है तो स्वयं के सशक्तिकरण के लिए उसे अपने सतत् व्यावसायिक विकास के साथ-साथ संचार व सम्प्रेषण तकनीक का पूर्ण ज्ञान होना तथा भारतीय संस्कृति के मूल्यों के अनुरूप शिक्षा का उचित संतुलन एवं सम्मिश्रण करना होगा तभी वह अपने शिक्षार्थियों के साथ न्याय कर सकेगा। इस दिशा में ठोस एवं सार्थक प्रयास अपेक्षित हैं।

संदर्भ

टाक, भरत, ''मूल्य शिक्षा में विद्यालय की भूमिका'', नई शिक्षा, अप्रैल, 2008

हुसैन, नौशाद, ''परम्परा से हटकर वेब आधारित शिक्षा'', भारतीय आधुनिक शिक्षा, 2 अक्टूबर, 2004

खादर, एम.ए., दास.पी., ''टीचर एडूकेटरस इनीशियेट रिफोर्मस, येट .....'', जनरल ऑफ इण्डियन एजूकेशन, 4 फरवरी, 2003

कुमार हर्ष, ''शिक्षक सशक्तिकरण में तकनीकी ज्ञान की अनिवार्यता'', प्राइमरी शिक्षक, 4 अक्टूबर, 2004

शर्मा, श्रीमती मंजु, ''अध्यापक शिक्षा प्रणाली में सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग'', एजूकेशनल हेराल्ड, वोल. 34, 2 अप्रेल-जून 2003

लहरी जी.के., ''पीडागोजीकल रिफोर्मस् थ्रू ट्रांजेक्शनल स्ट्रेटेगीज.....'' जरनल ऑफ इण्डियन एजूकेशन, 4 फरवरी, 2004।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

महिला सशक्तिकरण में सामाजिक सुरक्षा एवं शिक्षा का प्रभाव

अमृत पाटले*

देश की प्रगति में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं की भागीदारी अत्यावश्यक हैं। संसार के सृजन एवं संचालन में नारी का स्थान पुरुष से बढ़कर है। पुरुष ने तो मात्र बीज को संजोकर शिशु को जन्म दिया। उसे पाल-पोस कर समाज की भावी सदस्य बनाया। इस सृजन और पालन की प्रक्रिया में नर से नारी का अंशदान कहीं श्रेष्ठ है, साथ ही यह भी सर्वमान्य एवं सर्वानुभूत तथ्य है कि महिला सदियों से भेदभाव व शोषण सह रही हैं। आज भी उसकी स्थिति दूसरे दर्जे के नागरिक की है। शिशु ईश्वर की देन है, परन्तु जन्म लेते ही वह भेदभाव का शिकार होने लगता है। लिंग आधारित भेदभाव की यह कहानी स्वयं मानव की देन है। शताब्दियों से बालिकाएं, किशोरियां, युवतियां, प्रौढ़ाएं, वृद्धाएं केवल इस आधार पर भेदभाव का शिकार होती आई हैं कि वे स्त्री हैं।

महिलाओं से भेदभाव बलात्कार, दहेज, हत्या, अपहरण, घरेलू हिंसा, छेड़-छाड़ के कारण महिलाएं अपने आप को पारिवारिक व सामाजिक स्तर पर असुरक्षित समझ रही हैं।

महिला अपराध एवं हिंसा का अर्थ : महिलाओं के प्रति हिंसा एवं अपराध दो अलग-अलग शब्द हैं।

1. महिला अपराध वह है जो उसका उत्पीड़न एवं शोषण करते हैं, जैसे-उसके साथ बलात्कार, उन्हें बहल फुसलाकर भगा ले जाना एवं गाली-गलौच करना, उन्हें जला देना, हत्याकर देना आदि महिला अपराध के कुछ लक्षण हैं।

---

* अनुसंधान अध्येता, सतत शिक्षा तथा विस्तार विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, म.प्र.

2. महिला हिंसा से तात्पर्य है महिलाओं के निकट रिश्तेदारों जैसे माता-पिता भाई-बहन, सास-श्वसुर, देवर-ननद, भाभी, माँ, परिवार के किसी भी सदस्य अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला हिंसात्मक व्यवहार एवं उत्पीड़न जो नारी को शारीरिक, मानसिक आद्यात पहुंचाता हो।

''महिला के प्रति हिंसा के अंतर्गत बलात्कार दहेज हत्याएं पत्नी को यातनाएं देने, मानसिक हतोत्साहन तथा संचार माध्यम से स्त्री को गलत ढ़ंग से समाहित किया जा सकता है।''

महिला अपराध व हिंसा के वर्गीकरण

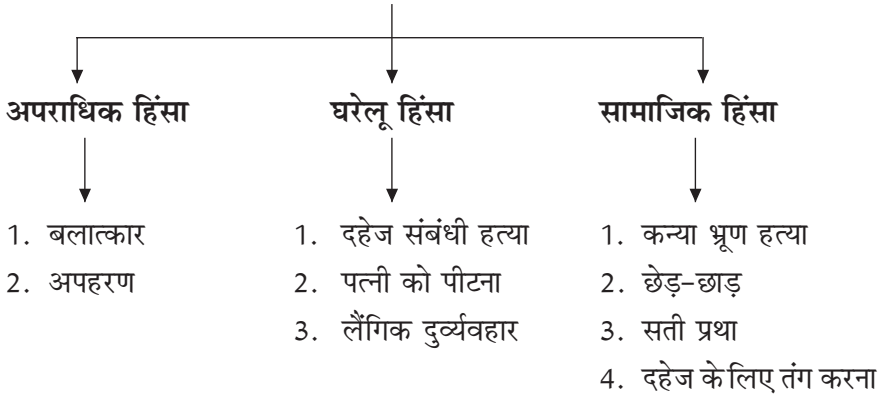

18 दिसम्बर 1979 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा द्वारा पारित-महिलाओं के लिए अधिकारों का विलेख-पत्र के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव का तात्पर्य लिंग के आधार पर किए जाने वाले ऐसे विभेद, अपवर्जन अथवा निर्बन्धन से हैं जो महिलाओं की पहचान पर प्रभाव डालता है अथवा जो उन्हें हानि पहुंचाने के उद्देश्य से किया जाना वाले आनंद अथवा क्रियाओं को प्रभावित करता है। उनकी वैवाहिक परिस्थिति को ध्यान में रखे बिना लागू किया जाता है। पुरुष और महिलाओं के बीच असमानता स्थापित करता है, एवं राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक अथवा अन्य किसी भी क्षेत्र में मानव अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं को प्रभावित करता है।

फाए वॉटलटन – ''जब तक दुनिया की सभी महिलाएं अपने अधिकारों से समझौता न करने की नहीं ठान लेती, तब तक उनका भविष्य सुरक्षित नही हो सकता।'' 18 दिसम्बर 1979 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा द्वारा पारित–महिलाओं के लिए अधिकारों का विलेख–पत्र में भेदभाव के आधार व क्षेत्र – (अनुच्छेद–1) वर्णित है।

गर्भधारण

- गर्भ परीक्षण में गर्भस्थ शिशु लड़की होने पर उसका गर्भपात – भारत में प्रति वर्ष 67 लाख महिलाएं गर्भपात करवाती हैं। पिछली एक शताब्दी में लिंगभेद अनुपात घटा है।

  भारत की जनगणना रिपोर्ट 2001 के अनुसार (प्रति हजार पुरुष) के अनुपात में 933 महिलाएं हैं, वहीं मध्यप्रदेश में लिंगानुपात 920 महिलाएं (प्रति हजार पुरुषों) पर हैं।

- बालिका शिशु हत्या – बालिका की हत्या के संबंध में अध्ययन करने पर यह पाया गया कि तमिलनाडु में 51 प्रतिशत परिवार बालिका शिशु हत्या करते हैं, वह भी दिल दहलाने वाले तरीकें अपनाकर। (रूस्तम–ए–हिन्द के अनुसार) 10 सितम्बर 1999 में टाइम्स ऑफ इंडिया में समाचार छपा था कि कि राजस्थान के देवरा नामक गांव में 110 वर्षों में पहली बारात आई, क्योंकि बालिकाओं का जन्म के बाद तुरंत मार दिया जाता है। मारने के लिए या तो बच्ची को गर्म दूध के टब में डुबो दिया जाता है या अफीम खिलाकर या तकिये से दबाकर मार दिया जाता है। यह बच्ची ननिहाल में पैदा होकर पली–बढ़ी थी, इस कारण बची रह गई।
- लड़की पैदा होने पर मां की उपेक्षा तथा अपर्याप्त प्रसवोत्तर देखभाल– प्रति वर्ष प्रसूति से सम्बन्धित कारणों से एक लाख 20 हजार महिलाओं की मृत्यु हो जाती है।
- पुत्री जन्म पर किसी प्रकार का समारोह आदि सामान्यत: आयोजित न किया जाना – पुत्र जन्म पर मिष्ठानों का वितरण किया जाता है।

शैशवावस्था और भोजन

- सीमित एवं अपर्याप्त सुख–सुविधाओं के साथ बालिका का लालन–पालन– 50 प्रतिशत महिलाएं खून की कमी से पीड़ित हैं एवं कुपोषण का शिकार हैं। बेटी व

बेटे के खानपान में भी कई परिवारों में अन्तर किया जाता है।

- माँ-बाप बेटी को एक दायित्व समझते हैं, जबकि बेटे को अपने बढ़ापे की सुरक्षा व सहारा मानते हैं। बेटी की पढ़ाई पर खर्च न करके इसके दहेज के लिए धन संजोते हैं जबकि बेटों की पढ़ाई पर खर्च किया जाता है।
- स्कूल में पढ़ने वाली लड़की से चौका-बर्तन, खाना पकाना आदि कार्य करवायें जाते हैं, जबकि लड़कों को ऐसे कार्यों से मुक्त रखा जाता है।
- लड़कियों का न तो जन्मदिन मनाया जाता है ओर न ही उपहार दिए जाते हैं।
- भाईयों की तुलना में बहिनों को अधिक त्याग व सहन करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

किशोरावस्था व शिक्षा

- लड़कियों को पसंद की शिक्षा प्राप्त करने से वंचित करना - सामान्यत: लड़कियों को कला, गृहविज्ञान आदि विषय दिलवाए जाते हैं, जबकि लड़कों को ज्यादातर व्यावसायिक शिक्षा दिलवायी जाती हैं।
- लड़कियों को अपनी पसंद का खेल खेलने से रोका जाता है।
- लड़कों की तुलना में लड़कियों को मुक्त भाव से आने-जाने, सहेलियां मिलने-जुलने, बाजार, पिकनिक व सिनेमा आदि जाने की छूट या तो कम अथवा बिल्कुल ही प्रदान नही की जाती है।
- अक्सर गालियाँ भी महिलाओं के नाम पर ही दी जाती हैं।
- जनगणना रिपोर्ट 2001 के अनुसार - भारत में कुल साक्षरता 65.38 प्रतिशत है, जिसमें महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत 54.16 है, जबकि पुरुषों में यह प्रतिशत 78.85 हैं। वहीं मध्यप्रदेश में यह दर 64.11 प्रतिशत हैं, जिसमें पुरुष साक्षरता 76.80 प्रतिशत और महिलाओं की 50.28 है।

विवाह

- लड़कियों का शारीरिक रूप से परिपक्व हुए बिना ही विवाह कर देना। खुलेआम होते हुए बाल विवाहों ने शासन-प्रशासन के उदारवादी मुखौटे को उतार फेंका है।
- वर पक्ष द्वारा विवाह से पूर्व लड़कियों को इस प्रकार देखना मानो कि वे एक वस्तु हो।

- अधिकांश लड़कियों को अपनी पसंद का वर चुनने की स्वतंत्रता न होना।
- सभी प्रकार से योग्य व गुणी होते हुए भी कन्या से विवाह करने पर दहेज दिया जाना, साथ ही दहेज के लिए बहुओं को यातनाएं देना तथा जान से मार डालना। भारत में हर 101 मिनट में दहेज के कारण मृत्यु होती है, पूरे देश में प्रति वर्ष 5000 महिलाओं की दहेज के कारण मौत होती है।
- विधवा पुनर्विवाह का प्रतिशत कम है, जबकि पुरुषों द्वारा पत्नी की मृत्यु होने पर आसानी से दूसरा विवाह कर लिया जाता है।
- विधवा स्त्री को अच्छे कपड़े व अच्छा भोजन करने और उत्सवों- समारोहों में भाग लेने पर प्रतिबंध लगाया जाता है। उसे अशुभ माना जाता है। विधुरों को इस प्रकार के प्रतिबंधों से पूर्णत: मुक्त रखा जाता है।

रोजगार

- संवैधानिक तौर पर रोजगार के अवसरों की समानता होते हुए भी व्यावहारिक तौर पर महिलाओं को रोजगार कम ही प्रदान करना।
- अधिकांशत: निजी प्रतिष्ठानों में विवाहित महिलाओं को नौकरी पर न रखना, क्योंकि विवाहित महिलाओं को गर्भवती होने पर सवैतनिक अवकाश देना होता है। कई निजी संस्थानों में यह अवकाश देने पर वेतन कटौती की जाती है।
- असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी दी जाती हैं। अधिकांश महिलाएं स्वरोजगार या दैनिक भत्ते के आधार पर काम करती है।
- कार्यस्थल पर महिलाओं का मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न करना।
- एक रिपोर्ट के अनुसार लगभग 50 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न का सामना करती हैं एवं 85 प्रतिशत महिलाएं उच्चतम न्यायालय के निर्णय से अनभिज्ञ हैं। 68.26 प्रतिशत महिलाएं सीटी बजाने, कटाक्ष, कामुक टिप्पणियों तथा यौन संकतों के कारण मानसिक उत्पीड़न का सामना करती हैं। 25.17 प्रतिशत स्पर्श जैसे शारीरिक उत्पीड़न का सामना करती हैं।
- सेल्स प्रमोशन के नाम पर विज्ञापन एवं प्रचार में नारी-देह का प्रदर्शन करना। पर्यटन जैसे उद्योगों में अधिक ग्राहक आकर्षित करने के लिए नारी देह को एक वस्तु के रूप में प्रयुक्त करना।
- पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा महिला श्रमिकों से अधिक घंटे कार्य करवाना।

- गांवों में महिलाएं खेती का अधिकांश कार्य जैसे बीज छांटना, पौधारोपण, गुड़ाई, खाद-पानी, फसल कटाई आदि सभी कार्य करती हैं, इसके बावजूद महिलाओं को कृषक श्रेणी में नही रखा गया है। केवल पुरुष ही कृषक श्रेणी में आते हैं।
- कारखानों एवं अन्य प्रतिष्ठानों में महिलाओं को नियमित नौकरी पर न दर्शाकर संविदा पर दर्शाना ताकि राज्य बीमा योजना, क्षतिपूर्ति भुगतान आदि लाभों से वंचित किया जा सके।

सम्पत्ति स्वामित्व

- संवैधानिक अधिकार के बाद भी पिता की सम्पत्ति में पुत्रियों को पुत्रों के समान उत्तराधिकार प्राप्त न होना।
- पति की सम्पत्ति पर पत्नियों का पूर्ण अधिकार न होना।
- स्वयं के स्वामित्व वाले मकान, दुकान, फैक्ट्री, कार आदि के उपयोग का अधिकार महिलओं को कम होना।
- सम्पत्ति के सृजन, रख-रखाव एवं प्रयोग में महिलाओं का दखल न के बराबर होना।

राजनीति एवं प्रशासन

- आज भी महत्वपूर्ण निर्णय पुरुषों द्वारा ही लिए जाते हैं, चाहे राजनीति से संबंधित हों अथवा परिवार से, एक शिक्षित एवं सम्पन्न महिला को भी पुरुष वर्ग की तानाशाही सहन करनी पड़ती है।
- प्रमुख राजनीतिक पदों पर महिलाओं को अनुपातिक दृष्टि से कम ही चुना जाना।
- राजनीतिक दलों द्वारा संसद एवं विधानसभाओं के चुनाव में टिकट वितरित करते समय महिलाओं की उपेक्षा करना।
- महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर आमतौर पर महिलाओं का नियुक्त न किया जाना।
- जिन्दगी भर माँ-बाप की सेवा के पश्चात् भी मुखाग्नि देने का अधिकार केवल पुरुषों को है, स्त्री को नहीं।
- परिवार नियोजन सम्बन्धी शल्य क्रिया करवाना भी महिलाओं की जिम्मेदारी मानी जाती है, इसलिए यह प्रतिशत भी महिलाओं में तुलनात्मक रूप से पुरुषों से ज्यादा है, जबकि यह जिम्मेदारी दोनों की है।

अमेरिका जैसे विकसित देश तक भी अभी तक कोई महिला राष्ट्रपति नही बनाई गई है, वहां महलिाओं और पुरुषों के वेतन के बीच अंतर का अनुपात पिछले एक सौ वर्षों में भी नही बदला है।

1995 संयुक्त राष्ट्र परिषद विकास रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में सिर्फ 14 प्रतिशत महिलाएं उच्च प्रबंधीय पदों पर हैं। विश्व का 70 प्रतिशत सबसे गरीब और अनपढ़ लोगों में महिलाएं आती हैं।

महिला (बालिका) शिक्षा

साक्षरता एक शुरुआत है। एक यात्रा है, किन्तु यह अन्त नही है। यह यात्रा बहुत दीर्घ है। साक्षरता की यात्रा उच्च शिक्षा को तय करते हुए विकास के मार्ग पर जाकर समाप्त होती है। यद्यपि आंकड़ें हमें यह दिखाते हैं कि महिलाओं की साक्षरता दर में तीव्र गति से वृद्धि हुई है, किन्तु पुरुषों के अनुपात में उनका शैक्षिक स्तर अभी भी पीछे हैं।

भारत में साक्षरता दर दशकीय (1951 से 2001 तक) प्रतिशत में :-

वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	महिलाएँ	स्त्री-पुरुषों में साक्षरता दर का अन्तर
1951	18.33	27.16	8.86	18.30
1961	28.30	40.40	15.35	25.05
1971	34.45	45.96	21.97	23.99
1981	43.57	56.38	29.76	26.62
1991	52.21	64.13	39.29	24.84
2001	65.38	75.85	54.16	21.69

महिलाओं को शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों के समानान्तर लाने के लिए इन उपायों पर विचार करना अति आवश्यक हैं :

1. लड़कों की भांति लड़कियों की शिक्षा का महत्व समझना होगा।
2. बालिकाओं को स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करना एवं संतुलित भोजन उपलब्ध कराना।
3. महिला सशक्तिकरण पर विशेष बल देना।
4. दहेज मुक्त समाज की स्थापना एवं कानूनी सरंक्षण प्रदान करवाना।

5. शादी की उम्र (लड़की- 18 वर्ष एवं लड़के की 21 वर्ष) को कठोरता से लागू करवाना।
6. स्कूलों में मध्यान्ह् भोजन की उचित व्यवस्था करना।
7. स्कूल भवन, पुस्तकालय, खेल मैदान, पीने के पानी, विद्युत की समुचित व्यवस्था करना।
8. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक बलपूर्वक फैलाना होगा।
9. कन्या भ्रूण हत्या पर पूर्णत: प्रतिबन्ध करना।
10. सामाजिक रुढ़िवादिता को बदलना होगा एवं लिंग असमानता को दूर करना।
11. आंकड़ों तक न रहकर, आंड़कों की सीमा से परे शैक्षिक अभियान चलाने होंगे।
12. स्त्री शिक्षा व्यवसायिक शिक्षा (कम्प्यूटर) के प्रति उदासीन रवैया छोड़कर जुझारू व्यक्तित्व अपनाना होगा।
13. ग्रामीण अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग बहुलक क्षेत्रों में शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़ानी होगी।
14. सामाजिक संस्थाओं, ग्राम पंचायतों को अधिकार सम्पन्न करना होगा तथा वित्तीय मदद भी करनी होगी।
15. 05 से 14 वर्ष तक के बालिका को अनिवार्य शिक्षा प्रदान करवाना।
16. शहरी एवं ग्रामीण अनुसूचित जाति/जनजाति/पिछडें वर्गों के छात्र-छात्राओं को छात्रावास, स्कॉलरशीप, राष्ट्रीय फेलोशीप, पुस्तक, यूनिफार्म, आने-जाने के लिए साईकल प्रदान कर रही हैं जिससें छात्राओं को शिक्षा प्राप्त करने में सुविधा हों।
17. म.प्र. सरकार की लाड़ली बेटी योजना जिसमें हाई स्कूल व हायर सैकण्डरी, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान कर रही है, जिससे बालिकाओं को शिक्षा की ओर आकर्षित करवाना। (वर्ष 2005-06 से प्रारंभ)
18. केन्द्र सरकार की धन लक्ष्मी नामक योजना की घोषणा कि गई है जिसमें राष्ट्रीय बचत पत्र जन्म से लेकर स्कूल, 18 वर्ष (शादी की उम्र) एवं एक लाख रुपयें तक का जीवन बीमा सहित दो लाख रुपयें से अधिक की राशि प्रदान करके शिक्षा में आने वाली बाधाओं की दूर करना चाहती है। (वर्ष 2008-09 से प्रारंभ)

19. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने – सिंगल चाइल्ड मेरिट स्कॉलरशिप योजना – के अन्तर्गत 550 छात्राओं को प्रतिमाह 500 रु. की दर से तीन वर्ष के लिए माता–पिता की इकलौती संतान को प्रदान की जायेगी। (वर्ष 2008–09 से प्रारंभ)
20. देश के प्रत्येक क्षेत्र में 3–5 किलोमीटर में शासकीय/प्राथमिक शाला व हाई स्कूल/हायर सेकण्डरी स्कूल, महाविद्यालय एवं छात्रावास की सुविधाएं उपलब्ध हों।

''शिक्षा हमारे लोकतंत्र की श्वास क्रिया है। यह शिक्षा ही है जो हमें उस भविष्य की सहज दृष्टि प्रदान करती है जिसे बनाने का हम प्रयास कर रहे हैं और इसके निर्माण के लिए हमारे भीतर बौद्धिक और नैतिक शक्ति पैदा करती है। केवल शिक्षा ही उन पुराने मूल्यों को सुरक्षित रख सकती है जो सुरक्षित रखने योग्य हैं और शिक्षा ही हमें ऐसे नए मूल्य प्रदान कर सकती है जो अपनाने योग्य हैं।''

देश की महिलाओं की स्थिति में प्रत्येक क्षेत्र में सुधार अवश्य हुआ है, लेकिन समाज में उन्हें वांछित स्थान दिलवाने के लिए अभी भी बहुत कुछ किया जाना है। महिलाओं के प्रति भेदभाव समाप्ति हेतु सक्रिय पहल करनी होगी, जैसे– नारी शिक्षा को बढ़ावा देना, बाल विवाह को सख्ती से रोकना, विधवाओं के साथ अमानवीय व्यवहार करने पर रोक लगाना, बालिका शिशु हत्या को प्रतिबंधित करना, पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करना, वेतन व रोजगार में भेदभाव समाप्त करना, विवाह व प्रसूति अवस्था में रोजगार की सुरक्षा सुनिश्चित करना, राजनीति व सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की सक्रिय भूमिका व स्वावलम्बन की भावना जागृत करना, तकनीकि व व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देना। खेलकूद व सांस्कृतिक जीवन में सहभागिता हो, सम्पत्ति में स्वामित्व हो। नारी की अबला, भोग्या व दासी वाली तस्वीर बदलनी होगी।

नोबल पुरस्कार प्राप्त प्रो. अमर्त्य सेन का कथन है कि यदि सबके लिए बुनियादी शिक्षा अनिवार्य रूप से उपलब्ध हो जाये तो विश्व में निश्चित ही बदलाव लाया जा सकता है।

भारत की राष्ट्रपति – श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटील ने कहा – ''मैं शिक्षा के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध हूँ, और प्रत्येक शख्स स्त्री–पुरुष, लड़का–लड़की को आधुनिक शिक्षा से लाभान्वित होते देखना चाहती हूँ।''

सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षणिक विकास में तीव्र गति लाकर महिलाओं में सशक्तिकरण लाया जा सकता है। कानूनी प्रयास भी तभी सफल होंगे, जब समाज

से सम्पूर्ण सोच और पूर्वाग्रह की घटनाओं में बदलाव आए। जन-मानस को शिक्षा के माध्यम से जागृत किया जाय। सन् 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाया गया। केन्द्र सरकार द्वारा घोषित राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति 2001 और क्रियान्वयन सन् 2001 को भाली-भांति क्रियान्वित करके उनकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने की दिशा में और भी अधिक प्रतिबद्धता और सजगता के साथ कदम उठाए गए जो तुलनात्मक रूप से अधिक सार्थक भी होंगे।

संदर्भ

जर्नल आफ स्टेट रिसोर्स सेंटर फार एड्ल्ट एजुकेशन सेंटर फार एड्ल्ट एजुकेशन, इंदौर (म.प्र.), मार्च 2003, वाल्यूम 01

सेंसस रिपोर्ट आफ इंडियन 2001, (रजिस्टरार जर्नल सेंसस आफ इंडिया, नई दिल्ली

यूनेस्को रिपोर्ट आन वर्ल्ड एजुकेशन एंड ह्यूमन राइट्स 2002

प्रयोजन - डिपार्टमेंट आफ कन्टीन्यूइंग एजुकेशन एंड एक्सटेंशन, बरकतुल्लाह यूनिर्वसिटी, भोपाल (2003-05, 06, 07, 08

डा. खण्डाई एच.के.-साइकालॉजी एंड रिसर्च इन एडल्ट एजुकेशन (2003), ए.पी. पब्लिशर्स, अम्बाला केंट, इंडिया

प्रज्ञा शर्मा, वूमन डवलपमेंट एंड इम्पावरमेंट (2001), अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, राजस्थान

एडल्ट एजुकेशन-भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ (2006-07-08)

बी. इन्द्रप्रस्थ स्टेट, महात्मा गांधी मार्ग, नई दिल्ली

डेली न्यूज पेपर, दैनिक भास्कर, हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स आफ इंडिया, नव भारत एंड राज. एक्सप्रैस

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

मूल्यों के विकास में शिक्षण संस्थानों की भूमिका

गोपाल प्रसाद नायक*

मूल्य क्या है? यह प्रश्न अपने आप में मूल्यवान है, क्योंकि मूल्य का विचार मानव को स्वत: उस जीवन दृष्टि की ओर ले जाता है जो यह देखती है कि जीने के लिए किसका महत्व है, जो यह खोजती है कि व्यक्ति और समाज के लिए क्या कल्याणकारी है।

Value शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Velere शब्द से मानी जाती है जो किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है। मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया, विचार को अपनाने से पूर्व यह निर्णय करता है कि वह उसे अपनाये या त्याग दे। जब ऐसा विचार व्यक्ति के मन में निर्णयात्मक ढंग से आता है तो वह मूल्य कहलाता है।

इस युग में मूल्यों पर सबसे अधिक चिन्तन मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने किया है। मनोवैज्ञानिकों ने मूल्यों को मनुष्य की रुचियों, पसन्दों और अभिवृत्तियों के रूप में लिया है। समाजशास्त्रीय मूल्यों का संबंध समाज के विश्वास, आदर्श सिद्धान्त और व्यवहार मानदण्ड की समाज के मूल्य होते हैं। इन्होंने स्पष्ट किया कि मनुष्य की अनेक आवश्यकताएं होती हैं, वह उनमें से कुछ का चुनाव करता है और ये उसके लिए लक्ष्य बन जाती हैं। लक्ष्यों में प्रतिस्पर्द्धा होती है, लक्ष्यों में सर्वोत्तम होता है वह उसका आदर्श बन जाता है। समाज इन आदर्शों से संबंधित आदर्श नियम अथवा मानदण्डों का निर्माण करता है। समाजशास्त्रियों की दृष्टि से जब ये आदर्श नियम या मानदण्ड समाज के सदस्यों के अन्त:करण व विश्वास के रूप में आन्तरिक तत्व का रूप धारण करते हैं तो इन्हें मूल्य कहते हैं। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि मूल्य मानव व्यवहार

* उपाचार्य, शिक्षा संकाय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

के निर्धारक व निर्देशक सिद्धान्त तथा मानक हैं जो सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न विकल्पों में से चयनित व्यवस्था के अनुरूप कार्य करने के दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं तो इन्हें मूल्य कहते हैं।

प्रो. अर्बन ने अपनी पुस्तक ''फण्डामेंडटल ऑफ ऐथिक्स'' में लिखा है कि ''मूल्य वह है जो मानव इच्छा की तृप्ति करे, जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण में सहायक हो।'' अन्त में वे कहते हैं कि केवल वही परमरूप से और साध्य रूप से मूल्यवान है जो आत्माओं के विकास या आत्म साक्षात्कार की ओर ले जायें। इस परिभाषा में मानव की जैविक से लेकर आध्यात्मिक तक सभी आवश्यकताओं का समावेश हो जाता है जिनका मानव जीवन के लिए महत्व है एवं जिसको पाने के लिए व्यक्ति और चेष्टा करते हैं जिसके लिए वे जीवित रहते हैं तथा बड़ा से बड़ा त्याग करते हैं। इस प्रकार मूल्य वह, सत्य है जिसके लिए व्यक्ति जीता है और आवश्यकता पड़ने पर वह संघर्ष करने, दुख सहने तथा मृत्यु को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है।

मूल्य एवं आदर्श ये दोनों ही चरित्र निर्माण तथा व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अंगीकृत या आत्मसात् किये हुए मूल्य ही जवीन आदर्श बनते हैं। जब मूल्यों का स्पष्टीकरण हो जाता है, मूल्य विशेष पर निर्णय ले लिया जाता है और उसे जीवन में ग्रहण कर लिया जाता है तभी वह आदर्श बनता है। यह भी कहा ता सकता है कि मूल्य मनुष्य के अन्तरतम में जगती हुई वह शक्ति है जो उसे एक विशिष्ट प्रकाश से कर्म करने के लिए प्रेरित करती है और उसके आचरण को शासित करती है।

मूल्य एक अमूर्त सम्प्रत्यय है। मूल्य प्रत्यय का पहला पद संज्ञानात्मक होता है, दूसरा भावनात्मक और तीसरा क्रियात्मक। मनुष्य सर्वप्रथम अपने समाज के विश्वास, आदर्श सिद्धान्त, नैतिक नियम और व्यवहार मानदण्डों को बिना सोचे समझे स्वीकार करता है पर जैसे ही इसमें विवेक की जागृति होती है वह इनके औचित्य के बारे में सोचने लगता है। इस सोच के साथ ही उसमें मूल्यों का निर्माण शुरू हो जाता है। अब उसे इनमें से जो उचित लगते हैं वे उसकी भावना से जुड़ जाते हैं और भावना से जुड़ने के बाद वे उसके व्यवहार को प्रभावित करने लगते हैं। जब तक ये उसके व्यवहार को प्रभावित नहीं करते तब तक इन्हें मूल्य नहीं कहा जा सकता है। मूल्य व्यक्ति के पसन्द पर निर्भन करते हैं। कोई व्यक्ति किसी विश्वास, आदर्श, सिद्धान्त, नैतिक नियम और

व्यवहार मानदण्ड को अधिक महत्व देता है और कोई किसी अन्य को। मूल्य व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करते हैं। भिन्न-भिन्न समाज, संस्कृति, धर्म और राष्ट्रों के मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं, मूल्यों से ही उनकी पहचान होती है।

प्राचीन काल में मनुष्य पशुवत जीवन जीता था। तब उसे जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता था। समय शक्तिशाली ही जीवित रह सकता था। अत: मनुष्य को अपना बल बढ़ाना होता था। तब सम्भवत: संघर्ष और शक्ति ही उसके जीवन मूल्य रहे होंगे। धीरे-धीरे मनुष्य प्राकृतिक जीवन से सामाजिक जीवन की ओर अग्रसर हुआ, ऐसे सामाजिक जीवन की ओर जिसमें संघर्ष और शक्ति के स्थान पर प्रेम, सहानुभूति और सहयोग का महत्व था। प्रेम, सहानुभूति और सहयोग को हम मूलभूत सामाजिक नियम, आदर्श, सिद्धान्त, व्यवहार मानदण्ड अथवा मूल्यों की संज्ञा दे सकते हैं। पर जैसे-जैसे हमने अपना विकास किया हमारे समाज का रूप जटिल होता चला गया, उसके विभिन्न आयाम जैसे- सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक आयाम विकसित हुए। सामान्य रूप से आज इन्हें ही मूल्यों की संज्ञा दी जाती है। अधिकतर लोग मूल्यों का वर्गीकरण इन्हीं आयामों के आधार पर करते हैं।

द्रुत गति से होने वाले आधुनिक औद्योगिक विकास, जनसंख्या विस्फोट एवं नगरीकरण के कारण आज मानव मानसिक कुण्ठाओं तथा आर्थिक विषमताओं से त्रस्त है। इसी कारण मूल्यों का ह्रास हो रहा है। मूल्यों के ह्रास के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है हमारा समाज, हमारी शिक्षा प्रणाली।

कोई भी व्यक्ति जन्मजात खराब नहीं होता उसे वातावरण खराब बनाता है। जब बालक पैदा होता है तो वह सबसे प्रेम करता है। उसका हृदय पवित्र होता है। उसमें जाति-पाँत का भेदभाव नहीं होता है। उसमें मानवीय मूल्य होते हैं। धीरे-धीरे जब वह बड़ा होता जाता है तो झूठ, स्वार्थ, हिंसा, घृणा उसमें पनपने लगते हैं। कल तक हम जिन मूल्यों को गिरा हुआ समझते थे उन्हीं के पीछे भाग रहे हैं। शिक्षाविद्व, अधिकारी, राजनैतिक, पारिवारिक तथा वैयक्तिक जीवन में अनेक कठिनाइयाँ आ गयी हैं। यह सार्वजनिक समस्या बन गयी है। वर्तमान समय में गिरते हुए मूल्यों से समाज को बचाना है। वर्तमान समय में मूल्यों को उपर उठाने के लिए शिक्षा को ऊपर उठाना आवश्यक है। वर्तमान में छात्र ही समाज के निर्माता हैं। अत: छात्रों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे

उसमें मूल्यों का विकास हो तथा शाश्वत मूल्यों का संरक्षण हो। छात्रों को इसके लिए मूल्यपरक शिक्षा देनी चाहिए।

हमारा दुर्भाग्य यह है कि हमने स्वतंत्रता के इतने वर्ष गुजारे, लेकिन शिक्षा प्रणाली ने इस महत्वपूर्ण पक्ष की उपेक्षा की है। नैतिक, आध्यात्मिक एवं भावनात्मक शक्तियों को दुरूह मानकर शिक्षा में उनकी क्रियान्वित को असम्भव बताया गया। धर्म निरपेक्षता का बहाना लेकर मूल्य निरपेक्ष शिक्षा का नारा उछाला गया परिणामस्वरूप राज्य में विघटनकारी तत्व आज पहले से कहीं अधिक हैं। शिक्षार्थी में चिन्तन का विषय भावना नहीं अपितु पदार्थ बन गया है। यह शिक्षा न तो मनुष्य में आत्मनिययंत्रण का विकास कर रहीं है न ही स्वाध्याय का। विद्यार्थी अपने कर्तव्यों से विमुख हो रहा है। वर्तमान शिक्षा पद्धति और मूल्यों के बीच कोई समन्वय नहीं है। वर्तमान शिक्षा ऐसी चाहिए जिसके अन्तर्गत बालक सत्य के आधार पर अहिंसा द्वारा प्रेमपूर्वक जीवनयापन करना सीखे। हमें ऐसा मनुष्य बनाना है जो स्वयं स्वेच्छा से शाश्वत मूल्यों के पालन का प्रयास करे, जिससे व्यक्ति, समाज सभी का कल्याण सम्भव हो। इसके लिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति की आत्मा जागृत करना आवश्यक है, जिसके लिए आध्यात्म की आवश्यकता है। वर्तमान समय में विज्ञान ने अध्यात्म की जड़ें उखाड़ फेंकी है। शिक्षा में आध्यात्म को भी स्थान दिया जाना चाहिए। तभी मूल्यों को पुनः स्थापित किया जा सकता है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जो मूल्य बताए गये हैं उन्हें शिक्षा द्वारा ही छात्रों के जीवन में उतारा जा सकता है। वे मूल्य हैं– प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, न्याय, सहिष्णुता, व्यक्ति का विचार, अभिव्यक्ति आदि। ईमानदारी, उपकार, विनम्रता, निःस्वार्थता, सम्भाव, मन, वचन कर्म की एकता के गुण इन्हीं मूल्यों को अपने छात्रों के जीवन में उतरना है। वर्तमान समय के मूल्य को बताने के लिए मात्र उपदेश को पर्याप्त साधन माना जाता है। इसमें अनुभूति, चिन्तन तथा क्रियान्वित नहीं है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विस्तार के साथ विवेक और बुद्धि का संकुचन हो रहा है। ज्ञान बढ़ रहा है और व्यक्तित्व का पतन हो रहा है। इस प्रकार ज्ञान और विवेक का असन्तुलन हो गया है। आज आधे से ज्यादा वैज्ञानिक और इंजीनियर सहायक यंत्रों का निर्माण कर रहे हैं। जिनसे हिंसात्मक ताण्डव नृत्य पारस्परिक शत्रुता, घृणा, मारकाट फैली हैं। इन सबको सही दिशा शिक्षा ही दे सकती है इसलिए हमें विद्यालयों में संयम

तथा सामाजिक व नैतिक मूल्यों का सृजन आवश्यक है।

विद्यालयों में मूल्य शिक्षा हो अथवा न हो और यदि हो तो किस रूप में, इस विषय पर भारत सहित अनेक देशों में खूब विचार-विमर्श हुआ है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि विद्यालयों में मूल्य शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिए पर इस शिक्षा का विधान अलग-अलग विषय अथवा क्रिया के रूप में न करके विद्यालयों में समस्त विषयों एवं क्रियाओं के साथ करना चाहिए।

विद्यालयों में प्रवेश लेने से पहले बच्चे अपने परिवार और समुदाय के सदस्यों के बीच रहते हैं। परिवार एवं समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण से वे अनेक विश्वासों, आर्दर्शों एवं सिद्धांतों को ग्रहण करते हैं। विद्यालयों का कार्य इस प्रकार ग्रहण किये गये विश्वासों, आदर्शों सिद्धान्तों और व्यवहार प्रतिमानों के काट-छांट कर उन्हें सिही दिशा प्रदान करना होता है। इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता है कि विद्यालयों के सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण मूल्य प्रधान हो। यहाँ सब छात्रों के साथ समान व्यवहार किया जाय, सबको समान अधिकार दिये जायें और सबके साथ उचित न्याय किया जाए।

विद्यालयों में जितने विषय पढ़ाये जाते हैं उन सभी के शिक्षण के साथ छात्रों में उचित मूल्यों का विकास किया जा सकता है। परन्तु भाषा एवं इतिहास दो विषय ऐसे हैं जिसके माध्यम से बच्चों में मूल्यों का विकास आसानी से किया जा सकता है। अध्यापकों को चाहिए कि वे भाषा के पाठ्यपुस्तक के लिए किसी पाठ को पढ़ते समय उसमें निहित आदर्शों और सिद्धान्त को बच्चों के सामने उजागर करें, उसके प्रति अनुकूल अनुक्रिया करें, मूल्य प्रधान घटनाओं एवं आचरण की प्रशंसा करें, गैर मूल्य आचरण के विरोध में अपनी सम्मति प्रकट करें और यह सब बच्चों की सक्रिय भागीदारी के बीच करें।

इतिहास केवल राजा महाराजाओं के उत्थान-पतन की कहानी नहीं होता उसमें जाति, समाज अथवा राष्ट्र विशेष की सभ्यता एवं संस्कृति तथा मूल्यों का दिग्दर्शन होता है, जैसे भारत के इतिहास को देखें- राम ने माता-पिता की आज्ञा से राज्य सिंहासन के स्थान पर चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार किया था। महाभारत में प्रातः से संध्या समय तक युद्ध चलता था और रात्रि में लोग एक-दूसरे की कुशल क्षेम पूछते थे। देश की

स्वतंत्रता के लिए भगत सिंह हँसते-हँसते फांसी के तख्ते पर चढ़ गये। देशभक्त स्वतंत्रता के लिए जेल में बन्द हुए। पर इन मूल्य प्रधान घटनाओं के साथ इतिहास के कोष में गैर मूल्य घटनाएं भी होती हैं। रावण ने सीता का हरण किया। कौरवों ने भरे दरवार में द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयास किया था। जब गांधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था तब अंग्रेजों के चेहते भारतीयों ने भारतीयों पर ही जुल्म किये थे। इतिहास के पृष्ठों में अंकित इन मूल्य प्रधान और गैर मूल्य प्रधान घटनाओं को स्पष्ट करना चाहिए। इससे बच्चें स्वभाविक रूप से मूल्य प्रधान घटनाओं से प्रभावित होते हैं। अध्यापकों को चाहिए कि इस प्रभाव का लाभ उठाएं, बच्चों को मूल्य प्रधान आचरण की ओर उन्मुख करें।

भूगोल शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में मुख्यत: देश-विदेश की प्राकृतिक स्थिति तथा विभिन्न मानव जीवन शैलियों का ज्ञान कराया जाता है। अध्यापक किसी भी देश की अच्छाइयों को उजागर कर बच्चों को अच्छे का चयन करने की ओर उन्मुख कर सकते हैं। नागरिक शास्त्र में मूल रूप से नागरिक के अधिकार एवं कर्तव्यों की चर्चा होती है। यदि नागरिक शास्त्र का अध्यापक यह तथ्य उजागर कर सके कि राष्ट्रहित में ही सबका हित तो निश्चित रूप से हम राष्ट्र के लिए समर्पित हों और तब राष्ट्रीय एकता स्वत: विकसित हो जायेगी। अर्थशास्त्र में मूल रूप से आय के स्रोत और साधनों की चर्चा होती है। अध्यापक अर्थशास्त्र के शिक्षण के साथ जीवन में अर्थ, श्रम, साहस और सहयोग के महत्व को स्पष्ट कर सकता है।

विज्ञान शिक्षण के साथ बच्चों के अनेक मूल्यों का विकास अध्यापक कर सकता है। जीव विज्ञान शिक्षण से पर्यावरण की शिक्षा दी जा सकती है। उनमें प्रकृति के प्रति प्रेम उत्पन्न किया जा सकता है। भौतिक विज्ञान से हम भौतिक जगत की वस्तुओं और उनके बीच की क्रियाओं के परिणामों का ज्ञान होता है। चूँकि मनुष्य का जीवन प्रकृति पर आधारित है, विद्यार्थी इस मूल्य को समझ सकें। विज्ञान के अविष्कारों को यदि कोई गलत करता है तो इसमें दोष न तो विज्ञान का है और न वैज्ञानिक का, यह दोष तो प्रयोग करने वाले का है।

विद्यालयों में विद्यालयी विषयों के शिक्षण के अतिरिक्त जो भी क्रियाएं होती हैं वे सब पाठ्य सहगामी क्रियाएं कहलाती हैं। मूल्य शिक्षा की दृष्टि से इनमें सर्वाधिक महत्व प्रात:कालीन सभा और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं का होता है।

विद्यालयों में महापुरुषों के जन्मोत्सव इसलिए मनाये जाते हैं कि उनसे हम प्रेरणा लें। पर आजकल विद्यालयों में इन जन्मोत्वसवों की केवल खाना-पूर्ति होती है, न अध्यापक रुचि लेता, न छात्र एवं छात्राएं। अध्यापकों को चाहिए कि इन उत्सवों पर महापुरुषों के जीवन पर प्रकाश डालें, उनके जीवन के प्रेरक प्रसंग सुनायें और आज के दिन बच्चों के साथ मिलकर कुछ जनहित में सोचें कुछ समाज सेवा का कार्य करें। ये वे क्षण होते हैं जब बच्चों में यह धारण बनाई जा सकती है कि अच्छे काम करने वाले का सम्मान हमेशा बना रहता है।

हमारे देश में तीन राष्ट्रीय उत्सव (15 अगस्त, 26 जनवरी एवं 2 अक्तूबर) मनाये जाते हैं। अध्यापकों को इन सब अवसरों पर राष्ट्र के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति शब्दों में नहीं कार्यों में करनी चाहिए। उसी स्थिति में राष्ट्र के प्रति हम प्रेम उत्पन्न कर सकेंगे, उनमें राष्ट्र हित के आगे अपने हितों का त्याग करने की भावना विकसित करें।

शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार विद्यालय का वातावरण अध्यापकों के व्यक्तित्व एवं व्यवहार तथा विद्यालय में उपलब्ध भौतिक सुविधाएं छात्रों को मूल्योन्मुख बनाने में विशेष भूमिका निभाते हैं। विद्यालय की प्रात:कालीन सभा, पाठ्यक्रम एवं पाठ्य-सहभागी क्रियाएं सभी धर्मों के धार्मिक उत्सवों का आयोजन, समाज सेवा में भी छात्रों में सहयोग व पारस्परिक सद्भाव, निष्ठा एवं इमानदारी अनुशासन एवं सामाजिक दायित्व आदि जीवन मूल्य के विकास में सहायक होते हैं। अत: मूल्य के विकास के लिए विद्यालयी वातावरण लोकतांत्रिक एवं उत्साहवर्धक, स्वच्छ, अनुशासन प्रिय एवं सृजनात्मक होना चाहिए।

मूल्यों की सीख तथा आदर्श प्रस्तुति में घनिष्ठ संबंध है। एक बार दिखाना – सौ बार कहने के बराबर माना जाता है। शिक्षक द्वारा प्रस्तुत आदर्श प्रस्तुति से छात्रों में मूल्य में आत्मसात सहज ढंग से हो सकता है। क्योंकि बालक के अनुकरण की मनोवृत्ति जन्मजात होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मूल्यों के विकास में शिक्षण संस्थानों की अहम् भूमिका है।

संदर्भ

किरनपाल, प्रेम : (1981), वैल्यूज इन एजूकेशन, एन सी ई आर टी, नई दिल्ली

गुप्ता, नत्थूलाल : (2005) मूल्यपरक शिक्षा और समाज, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली।

त्यागी, गुरसरण दास एवं नन्द, विजय कुमार : उदीयमान भारत में शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

डागर, वी.एस. : शिक्षा और मानव मूल्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण, 1992, पवन प्रिन्टर्स जे-9 नवीन शाहदरा, दिल्ली।

पाण्डेय, रामशकल एवं मिश्र, करूणाशंकर : (2005) मानवाधिकार एवं मूल्य शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

पाटिल, बी.टी. : (2008) वैल्यू एजूकेशन एवं ह्यूमन राइट्स एजूकेशन, ग्नासिस पब्लिकेशन।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षा में शोध अध्ययनों की गुणवत्ता का आलोचनात्मक अध्ययन

नरेन्द्र कुमार सिंह*

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन उच्च शिक्षा के सुधार की दिशा में किये जा रहे शोध कार्यों के आलोचनात्मक अध्ययन से संबंधित है जिसके लिए शोध कार्य कर चुके विद्यार्थियों से ही शोध कार्य की गुणवत्ता, दृष्टिकोण और जानकारी हेतु शून्य परिकल्पना की सहायता से स्व-निर्मित परीक्षणों द्वारा किया गया। यह अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अनुसंधान था जो सर्वेक्षण विधि द्वारा केवल शिक्षा-संकाय के पी-एच.डी. धारकों पर किया गया जो 2003 तक डिग्री प्राप्त कर लिये थे। इसके लिए वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर से संबंध 4 महाविद्यालयों का चयन यादृच्छिक प्रविधि द्वारा करके कुल 90 विद्यार्थियों पर अध्ययन किया गया जिससे प्राप्त निष्कर्ष व्यक्त करते हैं कि आज शोध कार्यों की गुणवत्ता में कमी आयी है। विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में शोध कार्य के प्रति बदलाव आया है और पी-एच.डी. धारक होने के बाद भी उन्हें अपने शोध कार्य की विस्तृत जानकारी नहीं है।

व्यापक रूप से विश्वास किया जाता है कि किसी देश की उच्च शिक्षा की स्थिति को ही उसके भविष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संकेत कहा जा सकता है। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने, जिन्होंने भारत के आधुनिकीकरण की नींव डाली थी, उन्होंने घोषणा की थी कि यदि विश्वविद्यालय ठीक होंगे तो राष्ट्र भी ठीक होगा। लेकिन इसके

* वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह पी.जी.टी. कालेज सिंगरामऊँ, जौनपुर, उ.प्र.

बावजूद उच्च शिक्षा को मुख्य भूमिका प्रदान की गयी, इस क्षेत्र में बहुत कम प्रगति हो पायी है। हालांकि विश्वविद्यालयों के कुछ कालेजों तथा संकायों ने अनुसंधान कार्य करके और विद्वान पुरुषों तथा महिलाओं की सहायता से उक्त विकास एंव आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को समर्थन देने में निर्णायक भूमिका निभाई है, फिर भी विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की सामान्य स्थिति राष्ट्र के लिए भारी चिन्ता का विषय है।

दस्तावेज के कथन से स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा की दशा सोचनीय है क्योंकि आज उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले हमारे विद्यार्थियों के सामने कोई सक्रिय उद्देश्य नहीं है। उद्देश्यहीनता के कारण वे किसी भी तरह से उपाधि प्राप्त करना चाहते हैं और उपाधि रूपी लाइसेंस नौकरी के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि उच्च शिक्षा से अनेक अयोग्य पारवलम्बी नागरिक तैयार होते जा रहे हैं। ऐसे में राधाकृष्णन आयोग तथा कोठारी आयोग द्वारा निर्धारित उच्च शिक्षा के उद्देश्यों पर ध्यान देना आवश्यक है।

राधाकृष्णन आयोग द्वारा निर्धारित उच्च शिक्षा के उद्देश्य

राधाकृष्णन आयोग के अनुसार प्रत्येक विश्वविद्यालय को उच्च शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए।

1. नये ज्ञान को खोजकर उसे ग्रहण करने, बिना किसी भय के सत्य की खोज करने तथा निरन्तर परिश्रम करके सफलता प्राप्त करने की चाह उत्पन्न करना।
2. प्राचीन भारतीय ज्ञान व संस्कृति से लाभ उठाकर वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप जीवन जीने की क्षमता उत्पन्न करना।
3. विश्व–बंधुत्व की भावना जागृत करना।
4. अनुशासित व चरित्रवान नागरिकों का विकास करना।
5. नेतृत्व के गुणों का विकास करना।
6. कुशल कार्मिकों को विकसित करना।

कोठारी आयोग द्वारा निर्धारित उच्च शिक्षा के उद्देश्य

कोठारी आयोग द्वारा निर्धारित उच्च शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

1. समानता व सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करना।

2. समाज को चिकित्सा, प्रोद्योगिकी, कला, कृषि, विज्ञान व अन्य विविध व्यवसायों के लिए योग्य व दीक्षित कुशल कार्यकर्ता देना।
3. जीवन के सभी क्षेत्रों में नेतृत्व करने की सामर्थ्य विकसित करना।
4. नये ज्ञान की खोज करना, निर्भय होकर सत्य की खोज करना तथा नयी आवश्यकताओं व अन्वेषण के सन्दर्भ में प्राचीन ज्ञान को संशोधित करना।
5. राष्ट्रीय चेतना का विकास करना।
6. प्रतिभाशाली व्यक्ति की खोज करके उनकी रूचियों, योग्यताओं, दम्भ आदि का विकास करना।

राधाकृष्णन आयोग तथा कोठारी आयोग द्वारा बनाये गये उच्च शिक्षा के उद्देश्यों पर यदिन ध्यान नहीं दिया जाता है तो उच्च शिक्षा की दशा और भी सोचनीय हो जायेगी जिससे राष्ट्र के अस्तित्व को खतरा हो सकता हैं।

उच्च शिक्षा के शिखर डिग्री चक्रवर्ती (पी-एच.डी.) होती है। जिसके लिए आजकल विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों द्वारा कराये जाने वाले शोध अध्ययनों का स्तर संतोषप्रद नहीं है। जिसका प्रमुख कारण है कि अधिकांश पर्वेक्षक ऐसे लोग हैं जिनमें शोध कार्य निर्देशन करने की क्षमता नहीं है। फिर भी येन-केन प्रकारेण पर्वेक्षक बन गये हैं और पी-एच.डी. की उपाधियां बेच रहे हैं और इनके माध्यम से विद्यार्थियों का शोषण हो रहा है क्योंकि किसी जानकार शोध निर्देशक को कुछ पैसे दिलाकर विद्यार्थी का अनुसंधान कार्य लिपिबद्ध करा लेते हैं। जबकि विद्यार्थी को उसका ज्ञान ही नहीं हो पाता है और वह करना भी नहीं चाहता, पैसा खर्च करके पी-एच.डी. डिग्री को खरीद लेता है। इस प्रकार ऐसे शोध पर्वेक्षक शोध निर्देशन तो नहीं कर पाते बल्कि पैसे के लेन-देन में बिचौलियों की भूमिका अदा करते हैं। शोधकर्ता की आवृत्त तथा अपने गुरु के शिक्षकों को शोधग्रंथ का परीक्षक नियुक्त करवाकर तथाकथित विद्वानों ने शोध कार्य का मात्र एक मजाक बना दिया है। अच्छे स्तरीय अनुसंधान के लिए प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों व कार्यशालाओं की जरूरत पड़ती है, और इनके साथ-साथ पढ़ने तथा पढ़ाने वाले विषय विशेषज्ञ शोध निर्देशक की जरूरत पड़ती है। 1984 से यू.जी.सी. द्वारा जे.आर.एफ. प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा ली जा रही है। जबकि विज्ञान विषय के लिए यह कार्य सी.एस.आई.आर. के सहयोग से चल रही है। अब विडम्बना यह है कि सभी छात्र जे.आर.एफ. की परीक्षा नहीं पास कर सकते और न ही

सभी शोध छात्रों को यू.जी.सी. सहायता आर्थिक रूप से कर सकती है। जबकि स्नातकोत्तर शिक्षा की गुणवत्ता व उसके स्तर तथा पद्धति को सुधारने हेतु अनुसंधान कार्य आवश्यक है फिर भी इसकी दशा दयनीय है।

शिक्षा की चुनौती नामक दस्तावेज में कहा गया है– ''विश्वविद्यालय पद्धति में व्यापक रूप से अनुसंधान कार्य किया जाता है और उसे खर्चीला समझा जाता है। लेकिन मुख्य राष्ट्रीय निवेश विश्वविद्यालय के बाहर प्रयोशालाओं में लगया गया है। इस प्रकार मुख्य कार्य की सुविधायें नहीं मिल पाती है।'' इस दशा को ठीक करना आवश्यक है आजकल विशेषकर ऐसे महाविद्यालयों के प्राध्यापक भी शोध निर्देशक बन चुके हैं। जिनके पास पुस्तकालय और प्रयोगशाला की अच्छी व्यवस्था भी नहीं है। यही कारण हे कि अच्छे शोध निर्देशक भी साधनों के अभाव में अच्छे अध्ययन नहीं करा पा रहे हैं। आज की स्थिति यह है कि अधिकांश शोध करने वाले विद्यार्थी द्वितीश स्तर के विद्यार्थी हैं जिनमें शोध कार्य के प्रति समर्पण की कमी है, संस्थाओं में शोध हेतु अनुकूल वातावरण का अभाव है, निर्देशकों के पास प्रभावी निर्देशन हेतु पर्याप्त समय नहीं है तथा उपाधि प्राप्त करने में अशैक्षिक तत्वों का प्रभाव बढ़ गया है। अनेक विषयों में शोध कार्य के मूल्यांकन हेतु वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया नहीं अपनायी जाती है। शोध प्राथमिकताओं का प्रसरण नहीं हो पाता है तथा समाज की दृष्टि से अनोपयोगी व अव्यावहारिक अनुसंधानों की संख्या बढ़ती जा रही है। अधिकांश शोध ग्रन्थ केवल पुस्तकालयों पर बोझ बढ़ाते हैं व उन पर खर्च धन का समाज को कोई लाभ नहीं मिल पा रहा है। इसी बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए अध्ययनकर्ता जिज्ञासित हुआ कि आज हो रहे शोध कार्यों का एक सर्वेक्षणात्मक अध्ययन किया जाय जिसके लिए प्रस्तुत अध्ययन किया गया था।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये थे

1. शोध कार्य के गुणवत्ता का अध्ययन
2. शोध के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
3. किये गये शोध कार्यों के संबंध में शोधकर्ताओं की जानकारी का अध्ययन करना

अध्ययन से संबंधित परिकल्पनायें

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया था।

1. शोध कार्यों का गुणवत्ता में असमानता नहीं है।
2. शोध कार्यों के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में असमानता नहीं है।
3. किये गये शोध कार्यों के संबंध में शोधकर्ताओं को पूर्ण जानकारी होती है।

अध्ययन का प्रकार

प्रस्तुत अध्ययन वर्तमान से जुड़े होने के कारण विवरणात्मक प्रकार का अनुसंधान था।

अध्ययन की विधि

प्रस्तुत अध्ययन को सर्वेक्षण विधि द्वारा किया गया था।

समष्टि

प्रस्तुत शोध अध्ययन की जनसंख्या वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर के समस्त शिक्षा-संकाय के वे शोध छात्र हैं जिन्होंने 2003 तक पी-एच.डी. उपाधियां प्राप्त कर ली है।

न्यादर्श

न्यादर्श का चयन यादृच्छिक प्रविधि द्वारा किया गया था जिसमें कुल 90 शोध विद्यार्थियों का चयन किया गया था।

तालिका-1

चयनित न्यादर्श का विवरण

महाविद्यालय का नाम	शोध छात्र	शोध छात्रायें	योग
राजा हरपाल सिंह पी.जी. कालेज सिंगरामऊँ, जौनपुर	17	5	22
टी.डी. कालेज जौनपुर	30	8	38
राज कालेज जौनपुर	10	6	16
हंडिया पी.जी. कालेज हंडिया इलाहाबाद	8	6	14
योग	65	25	90

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शोध उपकरणों का प्रयोग किया गया था जो शोधकर्ता द्वारा स्व-निर्मित है।

1. शोध उपकरण के रूप में गुणवत्ता जानने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया था जिसमें कुल 50 कथन बनाये गये थे और विशेषज्ञों की सहायता से इसमें से कुल 35 कथनों का चयन सुधार करके किया गया था।
2. शोध कार्यों के प्रति विचारों को जानने के लिए ''शोध कार्यों के प्रति अभिवृत्ति मापनी'' का निर्माण किया गया था जिसे लिकर्ट के सिद्धांत पर बनाया गया था। कुल 70 कथन पूर्ण सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत तथा पूर्ण असहमत की पंच बिन्दु मापनी पर निर्धारित किये गये थै और धनात्मक कथनों के लिए अंक क्रमशः 5, 4, 3, 2, 1 और नकारात्मक अभिवृत्ति वाले कथनों के लिए 1, 2, 3, 4, 5 अंक निर्धारित किये गये थे। इस उपकरण को 37 शोध छात्रों पर प्रशासित करके अंकन किया गया फिर अंकन के बाद 'टी' परीक्षण 27 प्रतिशत उच्च तथा 27 प्रतिशत निम्न अभिवृत्ति वाले विद्यार्थियों के बीच प्रत्येक कथन के लिए ज्ञात किया गया जो एक सूत्रीय परीक्षण होने के कारण डी.एफ. (18) के 1.73 से अधिक होने पर चयनित कर लिया गया था। यह सार्थक मान 0.05 सार्थकता स्तर पर था। इस प्रकार कुल 19 कथन ऋणात्मक अभिवृत्ति और 21 धनात्मक अभिवृत्ति वाले कथन चयनित हुये तथा अन्तिम रूप से चयनित 40 कथनों की अभिवृत्ति मापनी का निर्माण हुआ जिसे परीक्षण पुनरीक्षा विधि द्वारा विश्वसनीयता ज्ञात करने पर लगभग 0.68 प्राप्त हुई, वैधता हेतु 10 विशेषज्ञों को दिया गया जिनमें से 8 विशेषज्ञों के विचार पर स्तर समान रहे।
3. शोध कार्यों में पूर्ण जानकारी के लिए एक मूल्यांकन सूची बनायी गयी थी जिसमें शोध कार्यों के विभिन्न पहलुओं से जुड़े हुए प्रश्न थे जिसपर प्रतिक्रियाओं की प्रतिशत मात्रा की गणना की गयी थी। इसे भी उन्हीं 10 विशेषज्ञों को दिखाया गया जो शोध निर्देशक होने साथ-साथ शोध प्रबन्ध के परीक्षक भी रहे।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीकी

आँकड़ों के विश्लेषण हेतु शोध कार्य के गुणवत्ता और विचारों को जानने के लिए टी. परीक्षण का प्रयोग तथा शोध कार्यों की जानकारी के लिए प्रतिशत की गणना की गयी थी।

प्रदत्तों का संकलन

चयनित न्यादर्श के विद्यार्थियों से मिलकर तीनों शोध उपकरणों को भर लिया गया जो लगभग 2 घंटे में भर ली गयी। यह कार्य महाविद्यालयों के विभागों से सम्पर्क करके निर्देशकों की सहायता से ही संपन्न हो पाया। आंकाड़ों के संकलन में कुल 10 दिन लगे थे। साक्षात्कार अनुसूची पर अंकन सही के लिये 2 अंक तथा गलत के लिए 0 अंक प्रदान किया गया। अभिवृत्ति सूची पर धनात्मक कथन हेतु 5, 4, 3, 2, 1 और नकारात्मक कथन हेतु 1, 2, 3, 4, 5 अंक प्रदान किये गये जबकि मूल्यांकन सूची पर प्रति कथन प्रतिशत मात्रा की गणना की गयी।

समूह विभाजन

1. शोध कार्यों की गुणवत्ता को अध्ययन के लिए संकलित आंकड़ों के माध्य और मानक विचलन की गण्ना की गयी और (माध्य + मानक विचलन) से अधिक अंक हासिल करने वाले विद्यार्थियों को उच्च समूह तथा (माध्य–मानक विचलन) से नीचे पाने वाले विद्यार्थियों को निम्न समूह माना गया था जिसमें कुल 31 विद्यार्थी उच्च और 22 विद्यार्थी निम्न समूह में प्राप्त हुए।
2. अभिवृत्ति मापनी पर अंकन के बाद माध्य व मानक विचलन ज्ञात किया गया और (माध्य + मान विचलन) से ऊपर के विद्यार्थी को उच्च अभिवृत्ति और (माध्य – मानक विचलन) से नीचे के विद्यार्थी निम्न अभिवृत्ति वाले प्राप्त हुए जिनकी संख्या उच्च समूह के लिए 29 तथा निम्न समूह के लिए 23 विद्यार्थी प्राप्त हुए थे।

आँकड़ों का विश्लेषण तथा व्याख्या

संकलित आंकड़ों के विश्लेषणोपरान्त निम्नलिखित तालिकाओं का निर्माण हुआ था:

तालिका–2

शोध कार्यों के गुणवत्ता से संबंधित तालिका

गुणवत्ता समूह	संख्या विद्यार्थी	माध्य	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी. मूल्य	सार्थकता स्तर 0.05	डी.एफ.
उच्च	31	55.14	8.16	2.96	5.71	2.01	51
निम्न	22	38.23	12.08				

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि शोध कार्यों की गुणवत्ता के आधार पर उच्च समूह के मध्यमान 55.14 और मानक विचलन 8.16 हैं जबकि निम्न समूह के मध्यमान 38.23 और मानक विचलन 12.08 हैं। दोनों समूहों के बीच ज्ञात किया गया 'टी' मूल्य (5.71) सार्थकता स्तर 0.05 के डी.एफ. 51 पर सारणी मान (2.01) से अधिक है जिसके कारण बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है और यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शोध कार्यों कि गुणवत्ता में कमी आयी हैं। इसके सम्भवत: कारण है। कि जे.आर.एफ. परीक्षा और नेट परीक्षा से बचने के लिए येन-केन प्रकारणेन पी-एच. डी. 2003 तक अवश्य पूरी करके जमा कर दी जाय तथा दूसरा कारण है कि विद्यार्थी काम करना नहीं चाहता और शोध निर्देशक की अयोग्यता भी इसमें बढ़ावा देती है। तीसरा कारण है कि वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर में अपना शिक्षा-संकाय नहीं है बल्कि संबंद्ध महाविद्यालयों द्वारा ही शोध कार्य कराये जाते हैं जो साधन विहीन हैं, चौथा कारण है कि अन्य विश्वविद्यालयों में शोध हेतु पंजीकरण न होने पर इस विश्वविद्यालय के केवल डिग्री प्राप्ति हेतु पंजीकरण कराया जाता है। महाविद्यालयों में कुछ अयोग्य शोध निर्देशक भरे हुये हैं जिनके केवल हस्ताक्षर रेडीमेड पी-एच.डी. पर होते हैं क्योंकि उन्हें शोध प्रबंध का पूरा ज्ञान स्वयं में नहीं हैं और न वे जानना चाहते हैं क्योंकि अधिकांश रिटायर होने के करीब हैं और किसी भी तरह से अपनी पी-एच.डी. की संख्या बढ़ाने में लगे हैं।

तालिका-3

शोध कार्यों के विचारों से संबंधित तालिका

विद्यार्थियों के विचारों पर समूह	संख्या विद्यार्थी	माध्य	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी. मूल्य	सार्थकता स्तर 0.05	डी.एफ.
उच्च	29	145.82	21.34	5.7	3.39	2.01	50
निम्न	23	126.47	19.71				

उपरोक्त तालिका-3 से स्पष्ट है कि शोध कार्यों के प्रति विचारों पर प्राप्त समूह का मध्यमान (145.82) तथा मानक विचलन (21.34) और निम्न समूह का मध्यमान

(126.47) और मानक विचलन 19.71 प्राप्त हुआ है जबकि इनके बीच गणना टी. मूल्य 3.39 है जो कि सार्थकता स्तर 0.05 के डी.एफ (50) (2.01) से अधिक है। अत: बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता हैं। शोध कार्यों के प्रति उच्च समूह तथा निम्न समूह दृष्टिकोणों में भिन्न हैं इसके प्रमुख कारण हैं कि शोध कार्यों के प्रति गम्भीरता में कमी आयी है। और डिग्री धारण करने में अधिकता क्योंकि अशैक्षिक तत्व या द्वितीय स्तर के वे विद्यार्थी अधिकतर शोध कार्यों से जुड़े हैं जिनका उद्देश्य केवल डिग्री लेकर नौकरी पाना है न कि सीखना और न ही उनमें इसके प्रति नैतिक मूल्य हैं और न ही उनके शोध निर्देशकों में, दोनों में गुणवत्ता नहीं मात्रात्मक प्रभावी हैं। विद्यार्थी पी-एच.डी. हो जाता है और निर्देशक के खाते में एक पी-एच.डी. बढ़ जाती है।

तालिका-4

मूल्यांकन से संबंधित प्रतिशत तालिका

मूल्यांकन के प्रमुख प्रश्न	सही प्रतिक्रिया की प्रतिशत मात्रा	गलत प्रतिक्रिया की प्रतिशत मात्रा
आपके शोध प्रबंध का शीर्षक क्या था?	92	8
आप द्वारा किया गया अध्ययन किस प्रकार का अनुसंधान था?	61	39
अनुसंधान का उद्देश्य क्या था?	32	68
शोध उपकरण किसका प्रयोग किये थे?	71	29
परिणाम क्या पाया गया था?	62	38
आपके शोध का शैक्षिक महत्व क्या है?	22	78

90 विद्यार्थियों में 50 का विवरणात्मक तथा 40 का शोध प्रबंध दार्शनिक अनुसंधान था। इसे पूछते समय उनके शोध प्रबंध को अध्ययनकर्ता अपने पास लेकर देख रहा था।

उपरोक्त तालिका-4 से स्पष्ट है कि केवल 92.3 प्रतिशत शोध विद्यार्थी ही यह बता पाये कि उनके शोध का शीर्षक क्या है। जबकि बड़े शर्म की बात है कि 8 प्रतिशत ऐसे

शोध डिग्री धारक रहे हैं जो बिना थेसिस देखे अपने शोध शीर्षक भी ठीक से नहीं बता पाये हैं। फिर भी पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर ने उन्हें पी–एच.डी. डिग्री प्रदान कर दिया हैं। दूसरे प्रश्न पर केवल 61 प्रतिशत शोध डिग्री धारकों ने अपने शोध प्रबंध के अनुसंधान प्रकार को बता पाया और 39 प्रतिशत यह भी नहीं बता पाये। बल्कि कुछ तो यहाँ तक पूछ बैठे कि अध्ययन का प्रकार क्या होता है? जब तीसरा मुख्य प्रश्न पूछा गया कि आपने जो शोध कार्य किया है इसमें कितने उद्देश्य बनाये थे तो केवल 32 प्रतिशत विद्यार्थियों ने ही यह बात पूरी तरह से बताया कि उनके शोध प्रबंध के उद्देश्य क्या रहे जबकि 68 प्रतिशत ऐसे लोग थे जो अपने शोध प्रबंध के पूरे उद्देश्य भी नहीं बता पाये। जब विवरणात्मक अनुसंधान के शोध प्रबंध वाले विद्यार्थियों से पूछा गया कि आपने आँकड़ों के संकलन हेतु जो उपकरण प्रयोग किये थे किसके द्वारा निर्मित था तो 71 प्रतिशत डिग्री धारक उनके नाम बता पाये जबकि 29 प्रतिशत नहीं बता पाये। शोध प्रबंध में उन्होंने अपने शोध का परिणाम क्या पाया था तो 62 प्रतिशत डिग्री धारक केवल बता पाये जबकि 38 प्रतिशत ने कोई जवाब नहीं दिया। अंतिम मुख्य प्रश्न के जवाब में केवल 22 प्रतिशत विद्यार्थियों ने अपने शोध प्रबंध के शैक्षिक महत्व को बता सके जबकि 78 प्रतिशत इसके बारे में कोई प्रतिक्रिया देने में असमर्थ रहे या उद्देश्य से हटकर कुछ भी अनाप–सनाप जवाब दिये। इससे यह स्पष्ट होता हे कि शोध का स्तर निम्नस्तरीय है जो कि बहुत ही चिन्ता का विषय है। विद्यार्थी पी–एच.डी. हासिल कर तो लेता है परन्तु उसे ज्ञान बिल्कुल नहीं होता। इसके लिए जिम्मेदार शोध निर्देशक, विश्वविद्यालय प्रशासन और विद्यार्थी स्वयं हैं परन्तु क्षति राष्ट्र की है। और आने वाले पीढ़ी की है जो कि उचित नहीं प्रतीत हो रही है। परिणामों के आधार पर इसके लिये बनायी गयी शून्य परिकल्पना भी अस्वीकृत हो जाती है।

अध्ययन के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आता है:

1. शोध कार्यों की गुणवत्ता में कमी आयी है।
2. शोध कार्यों के प्रति विद्यार्थियों का दृष्टिकोण केवल डिग्री हासिल करने के लिए है न कि जानकारी प्राप्त करने के लिए।

3. शोधकर्ताओं में अधिकांश ऐसे भी डिग्री धारक हैं जिन्हें अपने शोध प्रबंध की जानकारी भी नहीं है।

शोध कार्य में सुधार हेतु सुझाव

शोध कार्य हेतु कुछ प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं:

1. शोध कार्य का अध्ययन उन्हीं संस्थाओं से कराया जाय जो साधन सम्पन्न हों।
2. शोध निर्देशक उन्हीं अध्यापकों को बनाया जाय जो शोध प्रणालियों के साथ-साथ विषय विशेषज्ञ और उसमें रुचि रखने वाले हों।
3. यू.जी.सी द्वारा प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक सेल बनाया जाय जो विषय विशेषज्ञों की हो ताकि अंतिम निर्णय शोधा प्रारूपों पर शोध प्रबंध की रिपोर्टों पर तथा शोध प्रबंध के सर्वेक्षण पर दे सके।
4. शोध प्रबंध का मूल्यांकन यू.जी.सी. सेल द्वारा निर्धारित विशेषज्ञों और उन्हीं के द्वारा चयनित परीक्षकों से कराया जाय।
5. शोध समस्या के चयन हेतु विषय के संबंधित निर्धारक निश्चित किये जाने चाहिए जो राष्ट्र विकास को देखते हुये बनाये जायें।
6. अच्छे शोध निर्देशकों को गुणवत्ता के आधार पर पुरस्कृत किया जाय।
7. अच्छे और मेहनती विद्यार्थी को यू.जी.सी. द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाय।
8. शोध कार्य करने से पहले एम.फिल या प्री.-डाक्टोरल कोर्स करना अनिवार्य किया जाय।
9. महाविद्यालयों में शोध निर्देशक बनाने के लिए गुणात्मक उत्थान की कसौटी का निर्माण यू.जी.सी. द्वारा किया जाय।
10. शोध अध्ययन जिस क्षेत्र से जुड़ा हो उस क्षेत्र के विशेषज्ञ की राय उस पर ली जाय।

संदर्भ

अग्निहोत्री, भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्यायें, दिल्ली रिसर्च पब्लिकेशं इन सोशल साइंसेज।

गुप्ता, एस.पी., (2000): आधुनिक मापन तथा मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

गुप्ता, एस.पी., (2002): सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

पांडे, रामशकल और करूणाशंकर मिश्र,: भारतीय शिक्षा की सम-सामयिक समस्यायें, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

बख्शी, गोवर्धन लाल (1975): अच्छी शिक्षा की ओर, नई दिल्ली, राज्यपाल एंड संस

भारत सरकार, शिक्षा की चुनौती (1985): नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली, शिक्षा मंत्रालय

मिश्र, विद्यासागर: भारतीय शिक्षा का विाकस एवं वर्तमान समस्यायें

सिंह व शर्मा जी.डी. (संपा.) (1989): हायर एजुकेशन इन इंडिया, दिल्ली, कोणार्क पब्लिशर्स

सिंह, आर.पी. (1983): कन्टेम्परी इंडियन एजुकेशन सीन, अम्बाला कैंट : द इंडियन पब्लिकेशन

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

वर्तमान परिवेश में उच्च शिक्षा का प्रबंधन

राजेश्वर सिंह*

उच्च शिक्षा राष्ट्र के भविष्य का दिग्दर्शक एवं सूचक है। पं. जवाहर लाल नेहरू ने इसलिए कहा था, ''यदि विश्वविद्यालयों के साथ सब कुछ ठीक है तो राष्ट्र के साथ सब कुछ ठीक होगा''। शिक्षा प्रणाली वह दर्पण है जिसमें राष्ट्र की तस्वीर देखी जा सकती हैं शायद इसीलिए कोठारी आयोग ने कहा कि ''हमारे राष्ट्र का भविष्य कक्षाओं से निर्मित हो रहा है''। आज उच्च शिक्षा का विस्तार हो रहा है। उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के कारण पारम्परिक शिक्षा विलुप्त होती जा रही है और समयानुकूल शिक्षा–रोजगारपरक शिक्षा, युगधर्म बनती जा रही है। शिक्षा के वैस्तार्य से यह जन सुलभ बनायी जा रही है। परिणामत: मात्रा बनाम गुणवत्ता की समस्या उत्पन्न हो रही है।

शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आ गया है। पहले शिक्षा उत्कृष्टता का लक्ष्य रखती थी, नौकरी का उद्देश्य नगण्य था। इसलिए एक कवि ने कहा था ''शिक्षे तेरी क्षय हो तू नौकरी हित बनी''। आज शिक्षा का मूल उद्देश्य रोजगारपरक बनता जा रहा है। आज का नारा बनता जा रहा है। ''शिक्षे! तेरी जय हो तू जीवन साधन बनी''। यूनेस्को को सौंपी गयी डेलोर्स कमेटी रिपोर्ट (1997) में स्पष्टत: कहा गया कि उपलब्ध साधनों में शिक्षा एक प्रमुख साधन है जिससे ज्यादा सघन मानव विकास और सामंजस्य स्थापित किया जाता है और इसके द्वारा गरीबी, उपेक्षा, अज्ञानता, उत्पीड़न और युद्ध कम होते हैं। अब पढ़ते हुए आमदनी प्राप्त करें earning while learning की बात की जा रही है।

* प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, 11, न्यू फ्लैट्स, हीरापुरी कालोनी, विश्वविद्यालय परिसर, गोरखपुर उत्तर प्रदेश

आज यह महसूस किया जा रहा है कि भारतीय उच्च शिक्षा केन्द्रों से अपेक्षित विकास एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पा रही है। भारतीय विद्यालयों में जहाँ सत्य की खोज में विद्वत्जनों का अनवरत् प्रयास अपेक्षित था, अब ये परीक्षा व्यवस्था करने तथा परीक्षा लेने तक सिमट गये हैं। प्रवेश और परीक्षा मुख्य हैं, अध्ययन-अध्यापन नगण्य बनते जा रहे हैं। स्थिति डीम्ड विश्वविद्यालयों तथा स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों के बेतहाशा वृद्धि के कारण बदतर होती जा रही है। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के पूर्व कुलपति प्रो. एम.एस. अगवानी ने शिक्षक दिवस-5 सितम्बर 1996 के अवसर पर अपनी व्यथा व्यक्त की कि ''हम जिन नौजवानों को महाविद्यालयों में प्रवेश देते हैं उनमें अधिकांशत: ऐसे हैं जो पढ़ाये नहीं जा सकते हैं और जिन्हें हम शिक्षा देकर उत्तीर्ण करते हैं उनमें से अधिकांश नियोजन योग्य नहीं होते।''

सूचना प्रौद्योगिकी ने उच्च शिक्षा प्रणाली को कब्जा में ले लिया है और राष्ट्र स्तर पर कुकुरमुत्ते की तरह बहुसंख्य शैक्षिक संस्थाएं पनपती जा रही हैं। शिक्षा की गुणवत्ता घटती जा रही है। ऐसे अयोग्य शिक्षकों से पढ़वाया जा रहा है जो न्यूनतम योग्यता पूरी नहीं करते और व्यवसायिक संस्थानों में ऐसे छात्र प्रवेश पा रहे हैं जो न्यूनतम मानक पूरा नहीं करते परन्तु फीस की मोटी रकम दे सकते हैं अथवा जिनके संरक्षक राजनीतिक रूप से प्रभावशाली है। औसत दर्जे से भी नीचे के छात्र शिक्षा परिसर में अनेक समस्यायें उत्पन्न कर रहे हैं।

उच्च शिक्षा अब नियंत्रण से बाहर होती जा रही है। अब प्रबंधन आवश्यक हो गया है। आज हम संगठनों के संसार में जी रहे हैं। इटजियोनी ने ठीक ही कहा है, ''हम संगठनों में पैदा हुए हैं, संगठनों द्वारा शिक्षित हुए हैं और हममें से ज्यादा लोग अपना अधिकांश समय संगठन हेतु व्यतीत करते हैं।'' आज के जमाने में, विशिष्टत: प्रबंधन एक दुरूह और संश्लिष्ट कार्य है। कारण यह है कि सामाजिक, आर्थिक और प्रौद्योगिकी विकास शिक्षा के वातावरण को बड़ी तेजी से बदल रहे हैं और शैक्षिक संस्थानों में बेतहाशा वृद्धि नई समस्यायें उत्पन्न कर रही है। दूसरी बात यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय सीमाएं विलुप्त हो रही हैं और उच्च शिक्षा में अत्यंत तीक्ष्ण प्रतियोगिता प्रवेश कर रही है। ऐसे परिवेश में एक शैक्षिक संस्था के पास कार्य कुशल प्रबंध तंत्र का होना आवश्यक बन गया है।

प्रबंधन में निम्न तत्वों का समावेश होना चाहिए :

1. आधारभूत ढांचा
2. संरचना
3. प्रबंध तंत्र से जुड़े लोग
4. प्रबंधन प्रक्रिया
5. नियम एवं परिनियमावली
6. विभिन्न घटकों का अन्तर्सबन्ध
7. परिवेश/वातावरण

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता एवं समयानुकूलता हेतु नीतिगत प्रबंधन आवश्यक है। इसका ध्येय या लक्ष्य (मिशन) अन्तर्दृष्टि एवं निदेशक सिद्धान्तों के माध्यम से आधारभूत ढांचा तैयार करना है जिसमें भूमि, भवन, फर्नीचर्स, शैक्षिक सहायता, पूर्णत: सज्जित प्रयोगशाला, पुस्तकालय तथा खेलकूद, छात्रावास, कैन्टीन, शुद्ध पेयजल की व्यवस्था हो।

ढांचे या संरचना में विकास परिषद, विभागीय श्रेणीबद्धता, आन्तरिक परिषद एवं समितियां सम्मिलित हैं जिनके माध्यम से समान उद्देश्य लेकर कार्य किया जाय। प्रबंधन में विभिन्न वर्गों– विभागीय उच्च अधिकारी, शिक्षक, गैर शिक्षण कर्मचारी, छात्रों के संरक्षक एवं पुराने छात्र आते हैं जो शैक्षिक संस्था के उन्नयन हेतु प्रयास करते हैं।

प्रबंधन प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य यह है कि सभी के प्रमुख प्रक्रियात्मक कार्यवाहियों का ध्येय सौहार्द द्वारा उपभोक्ता की संतुष्टि एवं कार्यवाहियों में प्रभावकारिता लाना है। अनवरत सुधार, समस्या समाधान आदि दिग्दर्शक होने चाहिए। इसमें कर्मचारियों का चयन, छात्रों का गुणवत्तायुक्त प्रवेश, अध्यापन एवं ज्ञानार्जन सुचितापूर्ण परीक्षा एवं मूल्यांकन, निदेशन, परामर्श देना तथा जांचयुक्त दृष्टिकोण सम्मिलित है।

शिक्षा संबंधित नियमों, परिनियमों एवं विनियमों का श्रृंखला होती है। अधिनियमों द्वारा विश्वविद्यालय संस्थापित होते हैं। परिनियमावली और विनियम उच्च शिक्षण संस्थाओं में नियुक्तियों, कर्मचारियों की सेवा शर्तों आदि का वर्णन करते हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एकरूपता संबंधी मानक निर्धारित करती है। विश्वविद्यालय,

प्रवेश परीक्षा तथा मूल्यांकन संबंधी नियम बनाते हैं जिससे शैक्षिक प्रबंधन ठीक हो। इसका उद्देश्य प्रभावकारी योजना पूर्ण व्यवस्था स्थापित करना है जिससे शिक्षण संस्था अपने लक्ष्य को पूरा कर सकें।

शिक्षा के उद्देश्य को व्यवहारिक रूप देने के लिए शिक्षण संस्था के प्रबंध तंत्र, सरकार, विशिष्ट निकायों (एन.सी.ई.आर.टी.), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालय तथा शिक्षण संस्थाओं के कर्मचारी, छात्र, सामाजिक संगठनों के बीच अन्तर्क्रियात्मक पारस्परिक संबंध होने चाहिए।

अत: शुद्ध परिवेश आवश्यक है क्योंकि शिक्षण संस्था भी समाज का अभिन्न अंग है। यह शून्य में कार्य नहीं करती है। समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना इसका लक्ष्य होना चाहिए। शिक्षण संस्थाओं की गतिविधियों की गहरी जड़ें समाज और संस्कृति में जमी हैं। वातावरण/परिवेश के प्रमुख तत्व हैं- सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी प्रकृति आदि। ये तत्व शिक्षण संस्था के प्रबंधन पर सीधा प्रभाव रखते हैं। सरकार, माता-पिता, सामान्य जन तथा स्थानीय संस्कृति भी वातावरण को प्रभावित करते हैं।

उच्च शिक्षा के प्रबंधन में विश्वविद्यालयों में कुलपतियों तथा महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों की प्रमुख भूमिका होती है। विभिन्न तरह के शिक्षक, कर्मचारी, छात्र उनसे जुड़े होते हैं। उनका अग्रसोची तथा दूरदर्शी होना आवश्यक है। उन्हें नयी योजनाओं को प्रारम्भ कर हकीकतन लागू करना चाहिए। उनमें मानव दक्षता, नेतृत्व के गुण, नैतिक दृष्टांतकता, प्रभावकारी संसूचना क्षमता, दृढ़-संकल्प शक्ति, प्रेरक कार्य, अन्तर्दृष्टि आदि के माध्यम से शिक्षण संस्था की प्रगति की क्षमता होनी चाहिए।

शिक्षण संस्थाओं में प्रबंधन तंत्र की वर्तमान स्थिति

जहां उच्च शिक्षण संस्थाओं में उपरोक्त तत्वों की प्रचुरता है और उनका ईमानदारीपूर्वक अनुपालन हो रहा है वहां शिक्षा का उन्नयन एवं उपादेयता बनी हुयी है। उदाहरण के लिए, आई.आई.टी. संस्थान, बार कौंसिल द्वारा स्थापित विधि विश्वविद्यालय, कतिपय केन्द्रीय विश्वविद्यालय आदि। परन्तु उच्च शिक्षा प्रबंध तंत्र के साथ सब कुछ ठीक नहीं है। यू.जी.सी. और सरकार के हस्तक्षेप बढ़ते जा रहे हैं। आये दिन परस्पर विरोधी निर्देश जारी किये जाते हैं, विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय तंत्र दूरगामी प्रभाव वाले स्वस्थ

निर्णय न लेकर तदर्थवादी लोकवादी निर्णय लेकर अनेक समस्यायें उत्पन्न कर रहे हैं। नियुक्तियों में भाई-भतीजावाद, जातीयता, धन बल का प्रभाव, राजनैतिक जोड़-तोड़ पर बिना नियम उच्च पदों पर नियुक्तियों का स्पष्ट असर दीख रहा है। कभी-कभी तो चयन समिति द्वारा सर्वोत्कृष्ट योग्यता वाले का तिरस्कार कर निकृष्टतम योग्यता या न्यूनतम योग्यताहीन अभ्यर्थी चुन लिये जाते हैं जो पढ़ाने की जगह राजनीति कर संस्था की अपूरणीय क्षति करते हैं।

शिक्षण परिसर जो विद्या का पावन मंदिर माना जाता है पूर्णत: अराजक बना गया है। अब प्रगति वाइस चान्सलर हाय हाय से बुलेट ध्वनि ठांय ठांय तक पहुंच गयी है। सुदूर गांवों में जहां प्राथमिक विद्यालय ठीक से नहीं चल पाते वहां उच्च शिक्षण संस्था स्थापित हो रही है। कतिपय शिक्षा-विधायें कागज पर प्रबंधित हैं। साल भर प्रवेश हो रहे हैं। फरवरी तक प्रवेश चलता है और द्रव्य मोचन के आकर्षण ने प्रबंधन को तार-तार कर दिया है।

आवश्यकता इस बात की है कि उच्च शिक्षा की गुणवत्ता, सामाजिक अपेक्षा एवं वैश्विक परिवेश को ध्यान में रखकर शिक्षण संस्थाओं में प्रबंधन को मजबूत, निर्भय एवं गुणवत्तावान बनाया जाए, जिससे शिक्षा में सेवाभावना, दूरदर्शिता, आदर्श सिद्धान्त और लक्ष्य एवं उद्देश्य पूरे किये जा सकें।

संदर्भ

दीक्षांत भाषण, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1948

कोठारी, डी.एस. (1970), एजुकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट (शिक्षा आयोग 1964-66 प्रतिवेदन) नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 1

डेलोर्स कमेटी रिपोर्ट, 1997, पृ. 11

के.एम. जोशी, हायर एजुकेशन-डेवलपमेंट इस्सूज, 2000, पृ. 12

एच.वी. शंकर नारायन एवं राजशेखर हेब्बर सी. ''मैनेजमेंट स्कील्स एंड प्रिंसिपल्स ऑफ फर्स्ट ग्रेड कालेजेज फार ट्वेंटी-फर्स्ट सेन्चुरी इन कर्नाटक'', यूनिवर्सीटी न्यूज, खंड-35, मार्च 15, नं. 11, वर्ष 1999, पृ.1

राल्फ जी. लेविस एवं डगलस एच. स्मिथ, टोटल क्वालिटी इन हायर एजूकेशन, 1998, पृ. 36 एवं शंकर नारायन एवं राजशेखर हेब्बर सी. कृत, मैनेजमेंट स्कील्स एंड प्रिसिंपल्स

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षा के क्षेत्र में प्रौढ़ साहित्य का महत्व

हीरालाल बाछोतिया*

प्रौढ़ साहित्य उतना ही पुराना है जितना ''सत्संग'' शब्द। प्राचीन भारत में शिक्षा पर एक विशिष्ट वर्ग का अधिकार था। किंतु कथा-वार्ता और भाषण-प्रवचन के द्वारा लोग धर्म और संस्कृति के संबंध में जानकारी प्राप्त कर लेते थे। जीवन के विभिन्न अनुभव भी उनके ज्ञान को विस्तृत बनाते थे। अत: पढ़े लिखे न होने पर भी लोग पढ़े-सुने, बहुश्रुत और बहुज्ञ कहलाते थे। सुनकर या देखकर ज्ञान प्राप्त करने में ''सत्संग'' का सर्वाधिक योगदान था। हमारे संतों ने सत्संग की महिमा का वर्णन यों ही नहीं किया । गोस्वामी तुलसीदास ने इसीलिए कहा-तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग, तुलैन ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग।'' निरक्षर जन भी सत्संग के माध्यम से जीवन-जगत की शिक्षा प्राप्त कर लेता था। क्योंकि तब शिक्षा सर्वसुलभ नहीं थी। उस समय शिक्षा धर्म की अनुगामिनी थी। दरबारों में नौकरी पाने के उद्देश्य से शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या में जरूर वृद्धि हुई थी। लोग संस्कृति पंडित और आलिम-फाजिल एक साथ होते थे।

वुड के घोषणा पत्र (1854) में भारत की जनता की अज्ञानता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए सिफारिश की गई थी कि देशी भाषाओं के माध्यम से जन साधारण की शिक्षा की व्यवस्था की जाए। इसके अंतर्गत रात्रि शालाएं खोलने का प्रबंध किया गया था जिनमें काम करने वाले बालक और प्रौढ़ पढ़ना-लिखना सीखते थे। इनकी संख्या सीमित थी। 20वीं शताब्दी में इनकी संख्या में वृद्धि हुई। किंतु आज जो प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य है उसके अनुरूप वह व्यवस्था नहीं थी। ये शालाएं उन बालकों के लिए थीं जो बिना प्राथमिक शिक्षा के नौकरी में आ जाते थे।

सन् 1919 के अधिनियम के अनुसार चुनाव का आधार वयस्क मताधिकार रखा गया था। अत: प्रौढ़ शिक्षा का आधार भी तैयार हुआ। हर्टांग कमेटी ने 1929 में ऐसी प्रौढ़ शालाओं की संख्या 11,203 बताई है। सन् 1935 में निरक्षर प्रौढ़ को साक्षर बनाने का

* प्रख्यात साहित्यकार एवं शिक्षाविद्, संपर्क : के 40, एफ साकेत, नई दिल्ली 110017

आंदोलन जैसा चलाया गया। ''अपना घर साक्षर बनाओ'' ''साक्षरता दिवस मनाओ''जैसे कार्यक्रम भी चलाए गए। हर जिले में एक थाना गहन प्रौढ़ शिक्षा के लिए चुना गया और साक्षरता दिवस के माध्यम से जन साधारण में प्रचार कर जागृति उत्पन्न की गई। अनेक प्रांतों में प्रौढ़ शिक्षा मंडल या कौंसिल का गठन भी किया गया।

सन् 1948 में केंद्रीय शिक्षा सलाहकार मंडल ने प्रौढ़ शिक्षा समिति का गठन किया। प्रौढ़ शिक्षा को समाज शिक्षा नाम दिया गया। किंतु स्वतंत्रता के बाद के कुछ वर्षों में प्रौढ़ शिक्षा की गति अत्यंत मंथर रही। 1978 में राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम अस्तित्व में आया तथा प्रौढ़ शिक्षा पर व्यापक विचार कर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया गया। 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का शुभारंभ किया गया। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अंतर्गत निरंतर या सतत शिक्षा की अभिकल्पना भी शामिल है। इसके अंतर्गत पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना भी समाहित है।

इस प्रकार प्रौढ़ शिक्षा के विकास के समानांतर प्रौढ़ साहित्य भी निरंतर लिखा जाता रहा। धार्मिक कथाओं, जीवनियों, लोक कथाओं आदि पुस्तिकाओं के माध्यम से ग्रामीण पाठकों में पढ़ने की जोत जलाने का काम भी लेखकों ने ही किया। पूर्व में साधन हीनता की स्थिति में बाजार में उपलब्ध वर्णमाला चार्ट से ही अक्षर ज्ञान दिया जाता रहा किंतु विशेष रूप से राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के शुरू होने पर साहित्यकारों/भाषाविदों/ शिक्षाविदों को आग्रह पूर्वक इसमें शामिल किया गया। निरक्षर आम आदमी के पास समय का अभाव होता है। वह वर्णमाला सीखने में 4 से 6 महीने का समय नहीं दे सकता अत: तेजी से पढ़ना सिखाने की दृष्टि से गंभीर विमर्श किए गए। ज्ञातव्य है कि नई विधि के विकास के लिए 1978 में एन.सी.ई.आर.टी. के संयोजकत्व में एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया था जिसमें प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय, साक्षरता निकेतन लखनऊ, समाज केंद्र तिलोनिया, दिल्ली विश्वविद्यालय, शिक्षा मंत्रालय आदि के प्रतिनिधियों का समावेश था। विचार-विमर्श और क्षेत्र की प्रतिक्रियाओं को ध्यान रखकर पढ़ना लिखना सिखाने हेतु चित्र-वर्ण विधि का निर्धारण किया गया। इसी चित्र-वर्ण विधि के माध्यम से आज भी प्रवेशिकाओं का निर्माण हो रहा है। जब से जिला साक्षरता समितियों ने भी प्रौढ़ साहित्य के निर्माण का कार्य हाथ में लिया है, प्रवेशिकाओं की बाढ़ जैसी आ गई है। किंतु यह स्वागत योग्य कदम ही माना जाना चाहिए। इससे हर क्षेत्र के पढ़ने वाले को अपनी जरूरत से जुड़ी, अपने लोगों से जुड़ी सामग्री पढ़ने के लिए उपलब्ध हो सकी है। यहां तक कि उसकी अपनी भाषा या बोली की छटा भी उसमें घुमड़ती दिखाई देती है। इससे साक्षरता को एक आंदोलन का रूप भी मिला है। केरल जैसे राज्य ने शत-प्रतिशत साक्षरता प्राप्त कर ली तो अनेक ऐसे राज्य भी हैं जिन्होंने संपूर्ण साक्षरता प्राप्त नहीं की

किंतु उन राज्यों के अनेक जिलों ने संपूर्ण साक्षरता का लक्ष्य जरूर प्राप्त कर लिया। इस दृष्टि से आकड़ों को लेकर बहस हो सकती है, उन्हें भ्रामक या बोगस भी कहा जा सकता है किंतु यह भी सच है कि कुछ न कुछ प्रगति अवश्य हुई है। कुछ भी पूछने पर चुप रह जाने वाला आदिवासी जन भी अब मुखर हो गया है। उसकी जबान फूट पड़ी है। और शायद यही निहित स्वार्थ वाले नहीं चाहते थे। उनके खेत खलिहान में काम करने वाला रमुआ यदि पढ़ना लिखना सीख गया तो उनकी मनसबदारी व्यवस्था का क्या होगा। इसीलिए उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को परवान नहीं चढ़ने दिया और आज वही कहते फिर रहे हैं–पूरा कार्यक्रम बोगस है। कार्यक्रम कहीं भी नहीं चल रहा। आदि–आदि।

इस प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में सभी का योगदान है। संस्थाओं, व्यक्तियों, स्वंयसेवकों, प्रशासन तथा सरकार– सबका। किंतु उससे भी अधिक योगदान नाम– अनाम लेखकों का है। यह लेखक ही है जो जीवन से जुड़े, प्यार, उत्तेजना, संदेश, विसंगतियों से जुड़े शब्दों को निरक्षर की धरोहर बनाता है। उसमें चेतना पैदा करता है। वह वास्तव में आम आदमी का लेखक है। वह उनकी संवेदना का सहभोक्ता है अत: अधिक मानवीय भी है। तथा बड़े साहित्यकार जो आम आदमी के लिए आंसू तो बहाते हैं किंतु उससे जुड़ते नहीं– उनका लिखा साहित्य आम आदमी पढ़ भी नहीं सकता किंतु जो आम आदमी के लिए लिख रहा है, वे उसे लेखक मानने को न तैयार हैं न उसके लिखे को साहित्य मानने को राजी हैं। फिर भी साहित्य निरंतर प्रौढ़ हो रहा है।

प्रवेशिका लेखन इतना आसान भी नहीं है। आदमी, उसकी जरूरतें, उसके सामाजिक दबाव, उसके लिए की जा रही पहल, उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि की जिसे जानकारी है वही उपयोगी प्रवेशिका का निर्माण कर सकता है। इसके अतिरिक्त उसकी साहित्यिक पृष्ठभूमि भी होनी चाहिए। ताकि वह मानवीय संवेदना को अपने शब्दों में बुन सके। भाषा विज्ञान का भी थोड़ा परिचय अपेक्षित होता है। और सबसे बढ़कर है लेखक की अनौपचारिक सोच। इसी सोच में ढलकर अच्छी प्रौढ़ शिक्षण सामग्री का निमार्ण होता है। प्रवेशिकाओं को खैर शिक्षण सामग्री का दर्जा देकर लोग संतोष कर लेते हैं। किंतु उत्तर साक्षरता तथा नव साक्षरों के लिए सामग्री निर्माण तो साहित्य कर्म ही है।

इस उत्तर साक्षरता तथा नव साक्षर साहित्य की अपनी अहमियत है। वर्षों तक प्रौढ़ शिक्षा में नव साक्षर साहित्य का महत्व नहीं समझा जा सका। यह देखा गया कि अनेकानेक प्रौढ़ अक्षर ज्ञान प्राप्त करने के बाद फिर निरक्षर हो जाते हैं। अत: उनके लिए सतत शिक्षा कार्यक्रम चलाया गया है। इस कार्यक्रम में स्कूल छोड़ देने वाले या ''ड्राप आउट'' युवा भी हैं जिनकी पढ़ने की आदत बनी रहनी चाहिए। अत: नवसाक्षर साहित्य निर्माण एक चुनौती के रूप में लिया गया है। यह चुनौती अच्छे पठनीय साहित्य

को लेकर है। ऐसा साहित्य जहां अपने व्यवसाय में सुधार कर सकें वरन् नये व्यवसायों की जानकारी भी प्राप्त कर सकें। इस तरह नव साक्षर साहित्य बड़े पैमाने पर तैयार किया गया है। वहीं पठन रूचि बरकरार रखने की दृष्टि से ऐसा साहित्य भी तैयार किया गया जिसे पाठक एक बार पढ़ना शुरू करे तो खत्म करके ही दम लें। ऐसे साहित्य में कहानियों, लोक कथाओं, औपन्यासिक कृतियों आदि को देखा जा सकता है। ऐसे साहित्य के लेखन के लिए कल्पना -शीलता, रचनात्मक प्रतिभा सभी की जरूरत है। वरन् नव साक्षर साहित्य लेखक के सामने एक और चुनौती होती है। वह है अपनी बात को सरल और रोचक शैली में कहना। एक नव साक्षर की साक्षरता की गति बहुत ज्यादा नहीं होती है। उसके पास समय का भी अभाव होता है। अत: ऐसे लक्ष्यीभूत श्रोता या पाठक के लिए लिखना साहित्यिक लेखन से भी बड़ा काम है। कहना न होगा, ऐसी पृष्ठभूमि और स्थितियों के लिए लिखने वाले एक तपस्या तुल्य कार्य को मूर्त रूप देने में संलग्न हैं। ''चिल्ड्रन आफ रिवोलूशन'' के लेखक जोनोथन कोजोल के अनुसार साक्षरता को सफलता लोवच, लेनिन या गुन्नार मिर्डल के तरीकों से नहीं मिल सकती।''वे आगे कहते हैं- इस हेतु हमें टालस्टाय के कथन को ध्यान में रखना होगा। वे कहते हैं-हम चाहे शब्द- ध्वनियों से पढ़ाना शुरू करें या शब्दों से जुड़ी पहचान से। ये तभी सफल हो सकते हैं जब इसमें बेहतर जीवन का आश्वासन हो।'' आशय यह कि प्रौढ़ साहित्य लिखने वाला साहित्यकार उपेक्षित, अवहेलित, दलित मानवता के लिए लेखन करते समय उसे बेहतर जीवन का आश्वासन जरूर देता है। इसी कारण उसकी रचनाओं में कभी-कभी ओढ़ी हुई बातें भी दिख सकती हैं। किंतु इस कारण उसका लेखन इतना उपेक्षणीय नहीं हो जाता कि साहित्य के पृष्ठों पर उसे हाशिये पर भी जगह न मिले। प्रौढ़ साहित्य का रचनाकार भी शब्द की साधना कर रहा है और प्रतिबद्ध होकर कर रहा है। इसके बावजूद शब्द अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। खतरे भी उठा रहा है। लेखक की खूबी यही है कि वह अभिशप्त मानवता की ओर से शिकायत दर्ज कराता है। बेहतर समाज और मानव के निमार्ण में अहर्निश सक्रिय रहता है। हर साहित्यकार की यही नियति होती है चाहे वह तथाकथित सृजनशील साहित्य का लेखक हो या प्रौढ़ साहित्य का लेखक। तथाकथित स्थापित रचनाकारों को पता ही नहीं होता कि उसका पाठक कौन है? प्रौढ़ साहित्य के लेखक का पाठक तो धूल-धूसरित गांव में, चरवाहे के रूप में, चाक चलाते कुंभकार के रूप में, ठक-ठक करते कारीगर के रूप में, शहर के स्लम क्षेत्रों में-हर कहीं बैठा उससे साक्षात्कार कर सकता है। इसलिए प्रौढ़ साहित्य के लेखक की जिम्मेदारी भी अधिक है, महत्व भी अधिक है।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

पढ़ने की संस्कृति की निरंतरता

शारदा कुमारी*

बात बहुत पुरानी नहीं है। चलते-फिरते यूँ ही एक दोस्त पूछ बैठे-''जरा ललक होने का अर्थ तो बूझो।'' ''कौनो बड़ी बात नाहीं'' के भाव के साथ एक नहीं कई अर्थ बता डाले। पर पूछने पर एक ही बात कही जाती, ''हाँ, कुछ नजदीक तो है पर भई एकदम सटीक नहीं है।'' झुंझलालाकर कह ही दिया-खुद ही बता डालो न।

मित्र ने सामने की तरफ इशारा किया,''देखो इसे कहते हैं ललक, बोलो ठीक है न।'' बोलना क्या था, देखना और समझना था, मन कर रहा था कि आंखों में समा जाए यह दृश्य। कोई दस-बारह साल की उम्र का लड़का था। एक हाथ में केतली और उसी हाथ की अंगुलियों में फंसी दो थालियां चीनी मिट्टी की। दूसरे हाथ में अखबार में लिपटी कोई पुड़िया और उस पुड़िया पर लिखी हर इबारत को आंखों में समा लेने की कोशिश। न तो आजू-बाजू चल रहे लोगों पर ध्यान और न ही आगे - पीछे किसी से टकराने का भय। बस चाहत थी तो इस बात की कि अखबार के पुरजे पर जो कुछ भी लिखा है उसे गन्तव्य स्थान तक पहुंचने से पहले पढ़ लिया जाए, पता नही बाद में पढ़ने को मिले या न मिले। आंखों के सामने गुजरते इस दृश्य के जरिए 'ललक'का मतलब समझना तो बहुत आसान हो गया पर बहुत से सवाल मन को झिंझोरने लगे। आखिर कौन सा अचरज उस टुकड़े में था जो बच्चे को यह भी होश न रहा कि वह चाय व प्यालियों समेत औंधे मुंह गिर भी सकता है? पढ़ने के प्रति ऐसा चस्का क्या सभी बच्चों में नहीं होता होगा? पढ़ने के प्रति इस बच्चे की यह छटपटाहट या चाहत जो भी कहिए, इसे बनाए रखने के लिए हमें कुछ नहीं करना चाहिए क्या? क्या इस तरह की चाहत पैदा करना हमारा उद्देश्य नहीं?

---

*वरिष्ठ प्रवक्ता, मंडल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर. के. पुरम, नई दिल्ली

'पढ़ना' भाषा का एक सामान्य कौशल है। इस सामान्य से कौशल में जहां एक तरफ स्कूल में सफलता पाने का मूल मंत्र छिपा है तो दूसरी ओर यह आलोचनात्मक चिंतन का भी औजार है। आम तौर पर पढ़ने के कौशल को स्कूली शिक्षा से जुड़े विषयों जैसे गणित, विज्ञान, भूगोल, भाषा, सामाजिक ज्ञान आदि के सार्थक अधिगम के उपकरण के रूप में देखा जाता है। कहने का मतलब यह है कि जब से ज्ञान की वाचिक परंपरा का स्थान लिखित परंपरा ने ले लिया है और लोक संस्कृति भी पुस्तकों में मुरवरित सी हो चली है, ''पढ़ना''आना और पढ़ने की आदत डालना बहुत जरूरी हो गया है। सोचने समझने वाली बात तो यह है कि 'पठन कौशल' के उद्देश्यों का दायरा बहुत ही विस्तृत और विशाल है। यह एक ऐसा सबल साधन है जो स्वतंत्र चिंतन, प्रभावशाली ढंग से विचार प्रस्तुतीकरण, तार्किक विश्लेषण, वर्तमान और भूतकाल की घटनाओं पर खुलकर अभिव्यक्त करने के गुण को पोषित करता है। इस प्रकार से 'पढ़ना'पाठ्यचर्या के विषयों को पढ़ने तक सीमित नहीं रह जाता और न ही इसकी बुनियादी भूमिका प्राथमिक कक्षाओं के बाद खत्म हो सकती है।

किताबों की दुनिया में ऐसा तिलिस्म बिखरा हुआ है जो सभी को अपनी ओर खींचने में किसी भी तरह की कोताही नहीं बरतता बस अगर गड़बड़ होती है तो हमारे द्वारा 'पढ़ना सिखाने' के तरीकों में और इन तरीकों में ही सिमट कर रह जाती है– पढ़ने की ललक और पढ़ते रहने की आदत या चस्का।

बच्चों जब पढ़ना सीख रहे होते हैं तो जिस तरह के आंनद रस की अनुभूति उन्हें होती है उसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है, उस मजे को शब्दों में उतार पाना मुझे नहीं लगता कि किसी भी लेखक या कवि के बस की बात है। बस यूँ समझ लीजिए कि जो मजा उन्हें घुमड़ते-उमड़ते बरसते-बरसते बादलों की बौछार में भीगने में आता है या फिर ऊंची-नीची मुंडेरों पर कूद छलांग कर पतंग लूटने में आता है या फिर गुड्डे-गुड़िया का ब्याह रचाने में आता है या फिर यूँ कह लीजिए कि आजकल जो मजा उन्हें टी.वी. या मोबाइल के बटन दबाने और उससे चिपके रहने में आने लगा है उससे भी कहीं ज्यादा मजा उन्हें पढ़ने में आता है। इस बात को परखने के लिए आप जा सकते हैं अपने बचपन की उन यादों में जब आप पढ़ना सीख रहे थे, अपनी पाठ्य पुस्तकें खासकर भाषा की तो आप रात भर में ही चट कर जाते थे, और बड़े भाई-बहनों की पुस्तकें (जिनमें कहानियां, नाटक, गीत आदि हो) भी आपसे अछूती न रह पाती थी। किताबें क्या वे लिफाफे जिनमें साग-सब्जी मिर्च-मसाले आते, उन्हें भला बिना पढ़े छोड़ पाते थे क्या?

चने-मूंगफली की पुड़िया का मजा तो तब तक नहीं आता था जब तक उस पर लिखे हर शब्द की जांच पड़ताल न कर ली जाए। कभी उँकडू बैठ तो कभी औंधे लेट, मेज के नीचे, टांड के ऊपर, गाय की मड़ैया या फिर दादी की खटिया तले जैसे-तैसे पढ़ने के मौके ढूंढ ही लेते थे। घर वालों के विरोध करने पर रजाई के भीतर टार्च जलाकर पढ़ने की कोशिशें भी देखी गई हैं। सोचने की बात यह है कि एक समय विशेष के बाद इस तरह की कोशिशें खत्म क्यों हो जाती है। पढ़ना सीखने की प्रक्रिया के दौरान बच्चे उत्साह के जिस समुद्र में गोते लगाते हैं, वह सूख क्यों जाता है? पढ़ने के प्रति मुग्ध भाव लिए ललक और जबरदस्त चाहत जो पढ़ने के शुरूआती दौर में पैदा होती है वह कौन सी विष बेल का सहारा लेती है जो एकदम सूख सी जाती है। उत्साही पाठक बनने का सफर शुरू होते-होते खत्म ही क्यों हो जाता है? जबकि भाषा शिक्षण का असल उद्देश्य तो है ही उन्हें उत्साही पाठक बनाना। ऐसा करते हैं पहले अपने सवालों का उत्तर जानने -समझने और कारणों की तह तक जाने की कोशिश करते हैं फिर विचार करेंगे कि बच्चों में पनपती हुई पढ़ने की संस्कृति को बरकरार कैसे रखा जाए, पढ़ने की निरंतरता बनाए रखने में साधक कैसे बना जाए।

बहुत से कारण तो मौजूद हैं हमारे स्कूली परिवेश और व्यवस्था में और कुछ वजहें तो घर के माहौल में ही मौजूद हैं। जहां तक स्कूल के माहौल का सवाल है तो सबसे पहले पढ़ना सिखाने के तरीके ही पढ़ने की संस्कृति पैदा करने में एक बहुत बड़ी रूकावट बन जाते हैं। 'पढ़ने' को भाषायी शिक्षा के केन्द्रीय क्षेत्र के रूप में सहर्ष स्वीकार तो कर लिया जाता है लेकिन स्कूली पाठ्यचर्या, जानकारियों और उसे याद करने के भार से इतनी बोझिल हो जाती है कि 'अपने लिए' पढ़ने का भाव पैदा होने के साथ या उससे पहले ही भ्रूण कन्या की तरह कुचल दिया जाता है।

इस संबंध में हममें से बहुतों के दृष्टिकोण तो बहुत ही निराशावादी हैं। घर अथवा पास-पड़ोस के माकूल माहौल के कारण जो बच्चे पढ़ने का कौशल थोड़ा जल्दी और ठीक से हासिल कर लेते हैं, हम कक्षा की समस्त गतिविधियों के लिए उन्हीं पर आश्रित हो जाते हैं। पाठ पढ़ने के, जवाब देने के और हां कभी-कभार सवाल करने के मौके भी हम उन्हें ही देते हैं। वजह बहुत सीधी सादी है। ऐसे बच्चों पर बहुत अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ती, हमारा काम आसान हो जाता है, अपने इस सुभीते के रहते दूसरे बच्चों के पिछड़ते जाने की परवाह हम करते नहीं। उनका पिछड़ना उन्हें स्कूल की दीवार के बाहर तो क्या पढ़ने की दुनिया से ही बार कर देता है।

जिन सुविधा विहीन बच्चों को 'कुशाग्र' कहकर पढ़ने के मौके भी दिए जाते हैं तो वे मौके पाठयपुस्तकों के पन्नों से बाहर नहीं जा पाते। पांचवीं-छठी तक आते-आते तो यह प्रवृति भी देखी गई है। पूरा पाठ भी पढ़ने का मौका नही दिया जाता-पाठ के अंत में दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ में छंटवा दिए जाते हैं। पूरा पाठ पढ़ने में जो समय लगेगा उसे गणित के सवाल हल करने में इस्तेमाल करने की सलाह दी जाती है। यह तो गनीमत है कि सवाल अब अपना स्वभाव बदल रहे हैं। यानी कि अब अगर उत्तर लिखने-ढूंढने हैं तो पाठ पूरा तो पढ़ना ही पड़ेगा (बशर्ते कुंजी न छपी हो) इस संबंध में अभिभावकों का दृष्टिकोण निराशावादी ही नहीं बल्कि घोर आतंकवादी है। बच्चों का जी मचला नहीं किसी किताब को खरीदने के लिए कि भाषण देना शुरू कर देंगे-''अगर पढ़ना ही है तो कोर्स की किताबें पढ़ो। इन कहानियों की किताबों को पढ़ने से कौन सी कलक्टरी करनी आ जाएगी''। या फिर-''कितबइया में मूढ़ घुसई के कौनो जिनगी नाहीं बनेगी। कुछ हाथ पांव हिलई लयो।

बच्चों द्वारा पाठ्यपुस्तकों से इतर किसी भी पुस्तक की मांग (कुंजी को छोड़कर) होने पर उत्तर मिलता है- ''किताबों पर पैसा खर्च करके क्या मिलेगा। खर्चा करवाना ही है तो काम की चीज खरीद। गोया किताबें तो काम की चीजें होती ही नहीं। जन्मदिन पर उपहार स्वरूप मिली पुस्तक उपहास का ही कारण बनती है। उसकी उपयोगिता रूपल्ली वाले आइटम से भी बहुत कम आंकी जाती है। गजब तो तब होता है जब इम्तिहानों के दिनों में पाठ्यपुस्तक से इतर कुछ भी हाथ में ले लिया, मसलन अखबार या कोई और पाठ्य सामग्री। तब बच्चों को जिस तरह के व्याख्यान सुनने पड़ते हैं उससे तो किसी की भी रूह कांप जाए-''हम यहां हाड़ मांस सुखा रहे हैं कि पढ़-लिख कर तुम ढंग के आदमी बनो, पर ये जनाब, ये तो अखबार पढ़ेंगे मैगजीन पढ़ेंगे। पढ़ाई-लिखाई जरूरी है या ये सब।'' आपको नहीं लगता कि इस तरह की सोच रखने वाले अभिभावकों के साथ हम सबकी बात होनी बहुत जरूरी है। इनसे रूबरू होने के मौके तो बहुत से मिलते हैं न। तो क्यों न इन्हें स्पष्ट रूप से जता ही दिया जाए कि पाठ्यपुस्तक के अलावा भी पढ़ने के लिए बहुत कुछ जरूरी है और उससे अंक प्राप्ति पर नकारात्मक असर नहीं पड़ने वाला।

पढ़ने की निरंतरता क्यों नहीं बनी रहती, इसके कारणों की चर्चा का सिलसिला तो खत्म होने से रहा चाहे वे स्कूल से जुड़े कारण हों या घर से जुड़े कारण, बेहतर होगा कि हम मिल जुल कर कुछ इस तरह का चिंतन मनन करें कि बच्चों में पनपती हुई 'पढ़ने'

की संस्कृति को जीवित कैसे रखा जाए। इसके लिए पहले से तैयारशुदा कैपसूल या गोली तो मिलने से रही। हमें अपने दृष्टिकोण को ही झिंझोड़ना होगा। हमें यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि पढ़ना सीखना पढ़ने की संस्कृति डालने या उस तक पहुंचने की पहली सीढ़ी है, विद्यार्थियों/बच्चों को इस सीढ़ी पर चढ़ने के प्रोत्साहित करना, मौके देना और वैज्ञानिक तरीके इस्तेमाल करना सिर्फ भाषा के अध्यापक के कार्यक्षेत्र में ही नहीं आना चाहिए। इस नेक काम में सभी अध्यापक हिस्सेदारी बंटा सकते हैं।

हमें यह भी समझना होगा कि पाठ्यपुस्तकें 'पढ़ना' सिखाने का एकमात्र साधन नहीं हैं। आस-पास के माहौल में बिखरी लिखित व मुद्रित सामग्री जैसे तस्वीरें, पोस्टर, होर्डिंग कहानी-कविताओं चुटकुलों-नाटकों की किताबें बहुत कुछ हैं जो पढ़ना सिखाने के समृद्ध व सशक्त उपकरण हैं। ये सभी पढ़ना सिखाने के साथ-साथ पढ़ने के प्रति इच्छा भी पैदा करते हैं।

स्कूली व मौहल्ला/गली स्तरीय सामुदायिक पुस्तकालयों को प्रोत्साहन देकर इस कार्य को समुन्नत तरीके से आगे बढ़ाया जा सकता है। ध्यान रखना यह जरूरी है कि हमारी भूमिका स्कूल की दीवारों के भीतर तक ही सिमटी हुई नहीं है। अभिभावकों और बच्चों की मदद से अपने आस-पास बिना सरकारी मदद के पुस्तकालय का खुलना और उसका उपयोग होना कोई बहुत बड़ा करिश्मा नहीं है। याद करिए न अपने बचपन को जब अपनी सहेलियों और दोस्तों के संग मौहल्ले भर की किताबें जमा कर मिल बैठ कर पढ़ा करते थे। ऐसे पुस्तकालय को चलाने का मजा भूले तो नहीं होंगे, हां पारिवारिक व कुछ दूसरी जिम्मेदारियों के रहते दुबारा से ऐसी लाइब्रेरी सुविधा जुटाना नहीं चाहते होंगे। कोई बात नहीं, बच्चों को तो उकसाया जा सकता है न इस काम के लिए। देखिए, अतिरिक्त पठन सामग्री दिए बिना तो निरंतरता की उम्मीद करना बेकार है। उद्गम स्रोत ही सूख जाए तो भला नदी बहने, बहता रहने की कल्पना कैसे की जा सकती है? मुझे याद आ रहा है रामनगर का बाल पुस्तकालय जिसमें मुद्रित पठन सामग्री तो न के बराबर थी पर फिर भी बड़ा समृद्ध संग्रह था। जानते हैं कैसे? मास्टरनी दयारानी बच्चों से बड़ों से कुछ न कुछ मजेदार, रोचक, अद्भूत अचरज भरे किस्से, गाने, प्रसंग, कविता-कहानी, शब्द अर्थ और भी न जाने क्या-क्या लिखवाती रहती हैं। यह लिखित सामग्री उनके पुस्तकालय की धरोहर बन जाती है, रजिस्टर में दर्ज होने के बाद न जाने कितनों को पढ़ने का आनंद देती है। जब थोड़ा सा भी लगा कि अब तो यह फटने के कगार पर है तो बड़ी जमात के बच्चों से दुबारा उतरवा लेती है। मुश्किल है क्या ऐसा करना? शहरों

में तो यह सब करने की जरूरत होगी नहीं, वहां तो सार्वजनिक पुस्तकालय भी हैं और स्कूलों के अपने पुस्तकालय भी। बस नहीं है एक प्रोत्साहन जो बच्चों के कदमों और चाहत का रूख इस लाइब्रेरी की ओर कर सकें। यकीन मानिए, कहानी, उपन्यास पढ़ना, समय गंवाना हो ही नहीं सकता। इससे तो हम एक तीर से कई निशाने साध रहे हैं, लिखने-पढ़ने के कौशल को विकसित करने के साथ उच्च स्तरीय कौशल जैसे सहिष्णुता, समालोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मक चिंतन और भी बहुत कुछ विकसित कर रहे हैं। एक मननशील प्राणी के रूप में विकसित कर रहे हैं। बच्चों को एक बार पढ़ने का चस्का लग जाए तो देखिए पाठ्यचर्या के बाकी विषयों को पढ़ना पहाड़ तोड़ने जैसा काम नहीं लगेगा।

हमें इस तरफ भी ध्यान देना होगा कि सभी श्रेणियों के सभी स्कूली विषयों के लिए महत्वपूर्ण सहायक पठन सामग्री जुटाने की तुरंत जरूरत है। इस सहायक सामग्री में कुंजियों को शामिल करना अपने मकसद से गद्दारी करने के बराबर होगा। यह सामग्री कैसी हो और कैसे जुटाई जाए, भला इस बारे में क्या बताना, एक बार जी में आने की देर है फिर देखिए हम सभी शिक्षक कैसे मरूस्थल में भी गंगा बहाते हैं। बशर्ते हमें यह ध्यान रहे कि पढ़ना-लिखना एक यांत्रिक कर्म नहीं है। शुरूआती दौर में कहानियों, कविताओं, तस्वीरों की बाहुल्यता हो तो पढ़ने का चस्का पड़ना आसान हो जाएगा। दरअसल कहानियों में बच्चे भावनात्मक रूप से रम जाते हैं। कहानियों में चरित्र होते हैं, एक घटनाक्रम होता है, उसकी अपनी एक बुनावट होती है जिसके साथ बच्चे अपनी समझ और कल्पनाएं रचते-बुनते चलते हैं। अब यदि विद्या की बात की है तो भाषा की भी बात कर लेते हैं। जिस तरह से हम रोजमर्रा के काम करने में परम्परागत और नए वैज्ञानिक तरीकों दोनों का ही इस्तेमाल करते हैं। तो फिर पठन सामग्री में विशुद्धता की मांग क्यों? बोलचाल की सीधी सादी भाषा में पठन सामग्री देने में हर्जा किस बात का?

चलते-चलते एक बात और कहनी जरूर है कि पढ़ने की संस्कृति ज्ञान और दुनिया की समझ बनाने के साथ दूसरे लोगों की भावनाओं व कल्याण के प्रति तर्किक प्रतिबद्धता को पोषित करती है तो फिर इस संस्कृति को बढ़ावा देने में हम पीछे क्यों रहें?

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 3, दिसंबर 2009

चिंतक और चिंतन

गिजुभाई बधेका का बच्चों के प्रति न्याय

बाल केन्द्रित शिक्षा की संकल्पना का योगदान

रश्मि श्रीवास्तव*

ऐतिहासिक घटना क्रम इस बात के साक्षी हैं कि भारत में अंग्रेजों द्वारा प्रसारित शिक्षा नीति का उददेश्य उनके स्वयं के हितों से सम्बन्धित थे। अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज प्रशासक इन व्यवस्थाओं के द्वारा भारतीय जनता को उनके धर्म व सांस्कृतिक विरासत से पृथक कर देना चाहते थे। मैकाले ने स्पष्ट कहा था ''हमें भारत में एक ऐसा वर्ग विकसित करना चाहिए जो हमारे और उनके बीच जिन पर हम राज्य करते हैं सन्देश वाहक का कार्य करें। एक ऐसा वर्ग जो रक्त और रंग में भारतीय हो परन्तु विचार, आदर्श और बुद्धि में अंग्रेज हो। भारतीय जनमानस अंग्रेजों द्वारा प्रसारित ऐसी शिक्षा व्यवस्था के विरूद्ध था जिसका इरादा भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति को समाप्त करना हो। भारतीयों के इस आक्रोश ने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक आन्दोलनों को जन्म दिया। परिणामस्वरूप देशभर में अनेक शिक्षा संस्थाएं गठित हुयीं और शिक्षा के क्षेत्रा में ऐसे नवीन प्रयोग हुए जो भारतीयों के हित में थे। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने जहाँ राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलनों को गति दी वही स्वामी विवेकानन्द ने मानवनिर्माण की शिक्षा की वकालत की। स्वामी दयानन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, विपिन चन्द्रपाल आदि जिस राष्ट्रीय शिक्षा के लिए प्रयासरत थे उसका आधार बच्चों की शिक्षा को मानते हुए गिजुभाई बधेका ने बाल शिक्षा के क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित किये। उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बच्चों की शिक्षा को चुना और इस क्षेत्र में उन्होंने सुधार के कई उपाय प्रस्तुत किये। हम देखते हैं कि देशभर में शिक्षा में सुधार के रूप में जो आन्दोलन छिड़ा हुआ था उन सबके बीच गिजुनाई बधेका बड़े शान्त भाव से गुजरात के बालमन्दिर के प्रांगण में

* विभागाध्यक्ष (बी.एड.) हीरालाल यादव बालिका डिग्री कालेज, सरोजनी नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

ऐसी कार्यपद्धतियां विकसित कर गये जिनकी प्रासंगिकता तत्कालीन परिस्थितियों में तो प्रभावपूर्ण होकर देश भर में प्रसारित हुयी ही, आज भी उनकी अपनी महत्ता है, अपनी उपयोगिता है। बधेका ने अंग्रेजी शिक्षा के बीच भारतीय बच्चों को वह आश्रय दिया जो उनके मनोभाव, उनकी प्रकृति के अनुरूप थी। तथ्यों को रटने-रटाने की तकनीकी प्रक्रिया के बीच बधेका अपनी बालकेन्द्रित शिक्षा व्यवस्था द्वारा भारतीय बालक-बालिकाओं को जिस स्वस्थ प्राकृतिक वातावरण में ला सके वह वास्तव में इन बच्चों के प्रति उचित न्याय था। छोटे बच्चों की शिक्षा को समर्पित इस महान आत्मा को हम सबका नमन ।

गिजुभाई बधेका का शिक्षा दर्शन

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी तथा भारत में बालकेन्द्रित शिक्षा के समर्थक गिजुभाई बधेका का जन्म 15 नवम्बर 1885 में सौराष्ट्र के चित्तल गांव में हुआ था। उनका पूरा नाम गिरजा शंकर भगवान जी बधेका था। लोग उन्हे प्यार से गिजूभाई कहते थे। आगे चलकर वह इसी नाम से जाने जाने लगे। वह अपने बाल्यकाल में विद्यालयी वातावरण से प्रसन्न न थे। 1910 में बम्बई में कानून की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात् गिजूभाई ने वकालत शुरू की किन्तु इस कार्य में उन्हे आनन्द व सन्तोष प्राप्त न हुआ। 1915 में वह श्री दक्षिणामूर्ति भवन के कानूनी सलाहकार बने और 1916 में वह दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन से जुड़े । दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन गुजरात के भावनगर में स्थापित एक शैक्षिक संस्था थी। इस संस्था से गिजुभाई के मामा श्री हरगोविन्द पांड्या भी जुड़े हुए थे। उन्होनें ही गिजुभाई को प्रेरित कर इस संस्था का सदस्य बनाया। गिजुभाई को मानो अपने जीवन की सही दिशा मिल गयी। 1920 में उन्होनें बाल मन्दिर की स्थापना की और वकालत त्याग कर बाल शिक्षण में नये प्रयोगों की दिशा में सक्रिय हुए।

गिजुभाई बच्चों की आजादी पर किसी प्रकार की रोक लगाए जाने को उचित नहीं मानते थे। उनका मानना था कि बच्चों को स्वतंत्रता प्रदान करके बेहतर ढंग से शिक्षित किया जा सकता है। इसके लिए उनको डांटने-डपटने की कोई खास जरूरत नहीं है। गिजुभाई ने मांटेसरी शिक्षा पद्धति के सिद्धान्तों का गहन अध्ययन किया था। मांटेसरी शिक्षा पद्धति के सिद्धान्तों को पूर्णतया आत्मसात करने के बाद उन्होनें उसके सिद्धान्तों को भारतीय परिवेश में प्रभावी बनाने के उपाय बताए। बच्चों को बगैर कोई यातना -प्रताड़ना

दिये, उन्हें प्यार-दुलार से पढ़ाने-लिखाने के लिए उन्होंने बाल केन्द्रित शिक्षण के क्षेत्र में अनेक सफल प्रयोग किये। 1916 से 1936 के बीच वह बालशिक्षा के विविध आयामों पर चिन्तन, मनन व प्रयोग करते रहे।

उन्होंने बाल-मंदिर को एक मन्दिर माना और बालकों को उस मन्दिर का देवता। उन्होंने बच्चों को देवता स्वरूप मानते हुए कहा था 'बाल देवो भव' उन्होंने स्वयं को बच्चों के मन्दिर का पुजारी माना, और सच्चे मन से बाल रूपी ईश्वर की उपासना में लगे रहे। 1925 में उन्होंने भावनगर में प्रथम मांटेसरी सम्मेलन आयोजित किया जिसके साथ उन्होंने पहला अध्यापन मन्दिर भी स्थापित किया। द्वितीय मांटेसरी सम्मेलन-1928 भी गिजुभाई की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

गांधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित गिजुभाई ने 1930 में गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में भी भाग लिया। इस आन्दोलन के बीच वह शरणार्थी शिविरों में रहे और वहां भी अक्षरज्ञान योजना आरम्भ की। सूरत में उन्होंने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए 'वरना परिषद' का गठन किया। इन प्रयासों के साथ-साथ वह शिक्षक के उत्तरदायित्वों के प्रति भी सजग रहे। 1938 में उन्होंने राजकोट में अध्यापन मन्दिर स्थापित किया।

इस बीच उन्होंने बाल साहित्य की रचना भी की। उन्होंने गुजराती में दो सौ से अधिक बाल-पोथियां लिखकर सारे गुजरात के बच्चों को स्वाध्याय की ओर प्रेरित किया। शिक्षकों को बाल शिक्षण के नूतन सिद्धांतों एवं गतिविधियों का प्रशिक्षण देने के लिए उन्होंने अध्यापन मन्दिर की भी स्थापना की। माता-पिता अध्यापकों व विद्यार्थियों के लिए कई पुस्तकों की रचना भी उन्होंने की। गुजराती में लिखी गयी ये पुस्तकें बहुत कम समय में बड़ी लोकप्रिय हुयी और गिजुभाई की ख्याति देश भर में फैल गयी। उनकी इन कृतियों का विभिन्न भाषा में अनुवाद हो चुका है। बाल पुस्तकों के प्रभावशाली लेखक होने के साथ-साथ गिजुभाई एक प्रभावशाली प्रत्रकार भी थे। उन्होंने शिक्षण पत्रिका का सम्पादन किया और इस पत्रिका में नियमित रूप से लिखते रहे। उन्होंने अपना सारा जीवन बच्चों के इन्द्रिय विकास के खेल ईज़ाद करने, शैक्षिक खेलकूद, शैक्षिक भ्रमण, हाथ के काम, संगीत, नाटक, रचनात्मक कार्य, बाल कथाओं आदि के सृजन हेतु समर्पित कर दिया था।

अंग्रेजी शिक्षा के बोझ तले भारत के बच्चे रटाने-रटाने की पद्धति के बीच जिस परिस्थितियों में अध्ययन कर रहे थे गिजुभाई ने उसे बाल मनोविज्ञान के विरूद्ध माना

और बच्चों की आवश्यकता, उनकी जरूरतों के अनुरूप शिक्षा पर बल दिया। उन्होनें इस बात का समर्थन किया कि बच्चों के अध्ययन का परिवेश स्वाभाविक हो। गिजुभाई को बाल जगत का पारखी माना जाता है। बाल साहित्य लेखन के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्ति का विकास करने-वाले गुजराती बाल साहित्य के प्रणेता गिजुभाई मात्र 54 वर्ष की आयु में चिर निन्द्रा में लीन हो गये।

23 जून 1939 को उनका देहावसान बम्बई में हुआ था। गांधी जी ने उनकी मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए लिखा था ''गिजुभाई के बारे में कुछ लिखने वाला मैं कौन हूं? उनके कार्यों ने मुझे सदैव मुग्ध किया है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उनका कार्य आगे बढ़ चलेगा।'' आगे चलकर पूरे भारतवर्ष में गिजुभाई के शिक्षा सम्बन्धी विचार बड़े ही लोकप्रिय हुए जिसका संक्षिप्त विवेचन निम्नवत है:

गिजुभाई द्वारा पोषित बाल केन्द्रित शिक्षा

गिजुभाई का मानना था कि शिक्षा जीवनव्यापी है, कोई व्यक्ति विशेष किसी अन्य को सिखा नहीं सकता। सीखने की प्रक्रिया अनुभव पर आधारित है, उन्होंने शिक्षा संबंधी अपने विचार को व्यवाहारिक रूप देने के लिए जिस बाल मन्दिर की स्थापना की थी उसमें ढाई वर्ष से छः वर्ष की आयु के बच्चों को प्रवेश दिया जाता था। वह शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रयोगों के समर्थक थे और बधी-बधाई परिपाटी को जारी रखे जाने को उपयुक्त नहीं मानते थे। उन्होंने कहा था कि शिक्षा के क्षेत्र में सुधार की बहुत गुंजाइश है। उनकी रचनाओं मे हमें बाल शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रयोगों के तमाम उदाहरण देखने को मिलते हैं। अपनी प्रसिद्व कृति 'दिवास्वप्न' में वह लिखते हैं– ''मैने पढ़ा और सोचा तो बहुत कुछ था, परन्तु मुझे अनुभव नहीं था। मैने सोचा मुझे स्वयं अनुभव भी करना चाहिए तभी मेरे विचार पक्के बनेंगे, तभी यह मालूम हो सकेगा कि मेरी आज की कल्पना में कितनी सच्चाई और खोखलापन है।'' और यहीं गिजुभाई का प्रयोगधर्मी, बालप्रेमी मन दिवास्वप्न के नायक के रूप में शिक्षा अधिकारी के समक्ष प्रार्थना करता दिखता है कि 'प्राथमिक पाठशाला की एक कक्षा उन्हें सौप दे।' हम देखते हैं कि गिजुभाई ने शिक्षा के क्षेत्र में अपनी कल्पनाओं को, निर्धारित सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप देने में भी सफलता प्राप्त की।

पाठयक्रम

गिजुभाई का मानना था कि विद्यालय का पाठ्यक्रम बालक की व्यक्तिगत भिन्नता,

प्रेरणा, मूल्यों तथा सीखने के सिद्धान्तों के मनोवैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होने चाहिए। उनका यह भी मानना था कि पाठ्यक्रम अधिक से अधिक क्रियात्मक हो। उनके द्वारा स्थापित बाल मन्दिर के पाठ्यक्रम में रचनात्मकता एवं स्वानुभवों को प्रधानता दी गयी थी। ढाई वर्ष से छ: वर्ष आयु के सामान्य बच्चों के लिए स्थापित इस विद्यालय (बाल मन्दिर) में निम्नलिखित विषयों एवं पाठ्यवस्तु को स्थान दिया गया था।

भाषा- अक्षर ज्ञान, पढ़ना लिखना।

गणित- अंकों का ज्ञान एवं पहचान, दैनिक प्रयोग की गणितीय संगणनाएं जैसे जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग, गिनती करना आदि।

संगीत एवं कला- प्रारम्भिक स्तर का संगीत, चित्र बनाना तथा उनमें रंग भरना आदि।

प्रकृति अध्ययन- भ्रमण, सामान्य भौगोलिक जानकारी, वृक्ष, वनस्पति, नदी, तालाब, आदि का निरीक्षण।

स्वास्थ्य- स्वास्थ्य एवं शारीरिक सफाई सम्बन्धी नियमों की जानकारी व उनका अनुपालन।

बागवानी- क्यारी बनाना, पौधा लगाना, सिचाई आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गिजुभाई छोटे बच्चों को व्यवहारिक जानकारी दिये जाने पर अधिक जोर देते हैं जो कि वे अध्यापक के सहयोग से स्वानुभवों द्वारा सीखते जाएगे। वह विभिन्न प्रकार की तकनीकी जानकारी इन बच्चों को किसी भी प्रकार रटा दिये जाने के पक्ष में न थे।

यहां वह बालक के शारीरिक व इन्द्रिय के विकास को बहुत महत्व देते हैं और विद्यालयों में उन्हे स्थान दिये जाने की वकालत करते हैं। इस सन्दर्भ में उन्होने कहा था कि आरम्भ में इन्द्रिय-शिक्षण न लेने के कारण आगे की सारी पढ़ाई बेकार बन जाती है। यही कारण है कि प्रारम्भिक शिक्षा हेतु वे बालको के शारीरिक विकास व इन्द्रिय प्रशिक्षण के प्रति अधिक सजग हैं। बाल मन्दिर की शिक्षण व्यवस्था का उदाहरण देते हुए उन्होंने लिखा भी है ''बालक बाल मंदिर के मुक्त वातावरण में और वहां के विशाल मैदानों में रहकर अपने शरीर को खूब कसता रहता है। जो बालक शुरू में फुर्ती के साथ चल फिर भी नहीं सकते कुछ ही दिनों में वे सारे मैदान में सरपट दौड़ने लगते है।'' इस विकास के साथ ही अपनी पद्धति के अनुसार हम बालकों को इंद्रियों का

शिक्षण भी देते हैं। इन्द्रियों का शिक्षण मन अथवा आत्मा के शिक्षण के लिए नींव रूप है। गिजुभाई विद्यालयी पाठ्यक्रम में इन दोनों प्रकार के प्रशिक्षण को पर्याप्त महत्व देने की वकालत करते हैं।

शिक्षण पद्धति

गिजुभाई के शिक्षा चिन्तन का मेरूदण्ड उनके द्वारा स्वीकृत शिक्षण पद्धतियाँ हैं। उन्होंने शिक्षक द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाली पारम्परिक व्यवस्था (पठन-पाठन) को छोटे बच्चों के लिए अनुपयुक्त माना था। उनका मानना था कि हम एक ही पद्धति द्वारा विविध विषयों की जानकारी बच्चों को न दे सकेंगे। हमें अवश्य ही विषय की प्रकृति व बच्चों की रुचि के अनुरूप शिक्षण विधियां प्रयुक्त करनी होंगी।

बच्चों को बगैर कोई यातना-प्रताड़ना दिये प्यार-दुलार के साथ पढ़ने-लिखने के लिए उन्होंने बाल-शिक्षण के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए। अपनी मेहनत, लगन, निष्ठा, निरन्तर जागरूकता तथा अखंडित प्रतिबद्धता-एकाग्रता के फलस्वरूप वे बच्चों के लिए शिक्षण का एक ऐसा संसार रचने में सफल हो सके जिसे सच्चे अर्थों में खुशियों का संसार कह सकते हैं। एक ऐसा संसार जहां, दुख, कष्ट, यातना, गाली गलौज, अपमान, डांट फटकार, कोसना, पिटाई और प्रताड़ना जैसी चीजों के लिए कोई जगह न थी। विभिन्न विषयों के लिए खेल व स्वानुभव माध्यम से शिक्षा दिये जाने सम्बन्धी उनकी शिक्षण विधियों के कुछ उदाहरण निम्नवत् है:

(I) कहानी एवं नाटक विधि

गिजुभाई कहानी कथन को बच्चों के शिक्षण का प्रमुख आधार बना देना चाहते थे। अपनी रचनाओं में उन्होंने उल्लेख भी किया कि कहानी माध्यम से बालको को प्रारम्भ में व्यवस्था सिखाई जाए, अभिमुखता का अभ्यास हो, भाषा शुद्ध की जाए, साहित्य का परिचय देते हुए आगे चलकर दूसरी बातें भी इसी माध्यम से सिखाना शुरू की जाए। इस विधि का प्रयोग उन्होंने विभिन्न विषयों के लिए किये जाने की वकालत की। उन्होनें बताया कि सद्चरित्र महापुरुषों की कथा सुनाकर छात्रों को अच्छे आचरण के लिए प्रेरित किया जाए। गिजुभाई ने इतिहास शिक्षण का प्रबल माध्यम 'कहानी कथन' को माना। यहां वह कहानी की मुख्य विषय वस्तु छात्रों को याद कराते हुए इतिहास का शिक्षण बड़े सहज रूप में करने की पद्धति बताते हैं। 'दिवास्वप्न' में वर्णित इस पद्धति का एक

उदाहरण देखें :

''मैंने सोचा आखिर कहानी की मुख्य वस्तु तो छात्रों को याद करनी ही चाहिए, नहीं तो इतिहास की शिक्षा में वह असफल रहेंगे। दूसरे दिन मैनें एक प्रयोग किया। कक्षा में वनराज की कहानी तीसरी बार चल रही थी। मैंने उसको थोड़े हेर-फेर के साथ कहने लगा। तत्काल लड़कों ने मुझे पकड़ा और बोले जी, आप यह क्या कहते हैं? पहले तो आपने एक हजार घोड़े बताए थे, अब पचास ही क्यों कह रहे हैं? और पहले तो झोपड़ी नदी के किनारे थी। मैंने मन में कहा, इन लोगों ने कहानी को समझा और हजम तो किया है। मेरी हिम्मत बढ़ी। मैने सोचा, अब ये भूलेंगे तो नहीं। लेकिन मेरी नमक मिर्च लगाई हुई कहानी इतिहास परीक्षक के लिए किस काम की। मैंने सोचा मुझको ये कहानियां परीक्षक की दूरबीन से कहनी चाहिए। अपनी कही हुई सब कहानियां मैंने लिख डाली और विद्यार्थियों को उन्हें पढ़ जाने को कहा। कहानियों के संक्षेप करने योग्य भाग मैने संक्षिप्त कर डाले। कहीं-कहीं स्थान और काल का भी सही निर्देश कर दिया। कहानी की कथन शैली और लेखन शैली में स्वाभाविक भेद होता है, इस भेद को मैनें समझा और उसी ढंग से मैंने कहानियां लिखीं। विद्यार्थियों को मेरी ये कहानियां पढ़ने में बड़ा मजा आया। अभी तक मुझको हिम्मत नहीं होती थी कि इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछने पर विद्यार्थी मुझको सही उत्तर देंगे। एक दिन मैंने एक कहानी को सूत्र रूप में लिखा। एक-एक वाक्य में एक-एक घटना पिरो दी और कहानी की वह रूपरेखा छात्रों को पढ़ने को दी। विद्यार्थी उसको पढ़ गये। पढ़ते-पढ़ते उनको अपनी सुनी हुई कहानी का स्मरण होने लगा। फिर एक दिन मैंने हिम्मत करके कहानी की घटनाएं प्रश्नोत्तर द्वारा विद्यार्थियों से पूछनी शुरू की। मेरे अचमभे का पार नही रहा। मेरे सवालों का जवाब वे तड़ातड़ देने लगे। मुझको विश्वास हो गया कि अब वे न केवल परीक्षा में पास होंगे, बल्कि परीक्षा के बाद भी उनको इतिहास याद रहेगा। कुछ दिनों बाद मैंने प्रयोग की दृष्टि से अधिकारी महोदय को अपनी कक्षा में बुलाया और उनसे प्रार्थना की कि वे इतिहास में छात्रों की परीक्षा ले। परीक्षा के बाद प्रसन्न होकर उन्होनें कहा, दूसरी कक्षाओं में भी इसी रीति से इतिहास पढ़ाया जाना चाहिए। मुझको उनके शब्दों से बड़ी तसल्ली हुई।

नाटक पद्धति के सन्दर्भ में उन्होनें कहा ''नाटक खेलकर 'बालक मुख्य रूप से अभिनय की अपनी वृत्ति को वेग और सन्तोष देता है। अभिनय एक कला है। उसके द्वारा मनुष्य का कला-प्रिय स्वभाव प्रकट होता है। यह वृत्ति सहज है और बाल विकास के काम में इसका अपना स्थान है।''

(II) खेल विधि

गिजुभाई द्वारा बच्चों की शिक्षा के क्षेत्र में किये गये प्रयोगों में खेल विधि का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने विभिन्न विषयों को खेल-खेल में पढ़ा दिये जाने के अनेक उपाय हमें बताए। उन्होंने कहा भी था कि खेल खेलने में ही तो आनन्द आता है। यदि थोड़ा समय बर्बाद भी हो जाए, पर परिणाम अच्छा और स्थायी आए तो हानि ही क्या है। व्याकरण जैसे जटिल तथा नीरस विषयों को भी इस पद्धति से रुचिकर बनाने के अनेक उदाहरण उन्होंने दिये - इस संदर्भ 'दिवास्वप्न' में वर्णित खेल विधि द्वारा व्याकरण शिक्षा का एक उदाहरण देखें -

''मैने व्याकरण का कोर्स पढ़ा और सोचा कि मैं इस कार्यक्रम से तो नहीं चलूंगा। संज्ञा, सर्वनाम, क्रियापद आदि की परिभाषाएं रटी तो बड़ी जल्दी जा सकेंगी परन्तु समझ में उतनी जल्दी नहीं आ सकेंगी। जब बचपन में मुझको यह विषय समझाया जाता था, तो मैं भी इसे समझ नहीं पाता था, केवल याद भर कर लेता था। ...मैंने प्रचलित प्रथा को नमस्कार करना ही उचित समझा। अब सवाल यह उठता था कि व्याकरण पढ़ाया किस रीति से जाए? मैंने इस पर विचार किया, एक योजना भी बना डाली और तद्नुसार काम करने लगा। सचमुच विद्यार्थियों को बड़ा मजा आया। उनके लिए वह एक सुन्दर खेल हो गया और दो महीनों में तो वे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण क्रियापद और अव्यय पहचानना और उन्हें वाक्यों में से चुन कर दिखाना सीख गये। एक वचन और बहुवचन, स्त्रीलिंग और पुल्लिंग का भेद भी वह समझ गये। मैं कर्ता और कर्म को पहचानने की योजना पर विचार कर ही रहा था कि इस बीच एक दिन, जब हमारी कक्षा में व्याकरण के खेल चल रहे थे, एकाएक श्रीमान डिप्टी डायरेक्टर महोदय आ पहुंचे। उन्होंन मेरा कार्य देखा और दंग रह गये। कहने लगे, भई लड़को को ताश खेलना क्यों सिखलाते हो? छमाही परीक्षा नजदीक आ रही है, जरा तेजी से काम लो। मैंने हँस कर कहा, जी, मुझको इसकी पूरी-पूरी चिन्ता है, ये तो व्याकरण के खेल चल रहे हैं। आप जरा व्याकरण में इन छात्रों की परीक्षा तो लीजिए। साहब ने छात्रों से दो चार सवाल पूछे। मुझसे कहने लगे, ओहो। यह तो बड़ा ही सुन्दर काम हुआ है। तुम्हें मुझको सारी योजना समझानी चाहिए। डिप्टी डायरेक्टर के सामने दिवास्वप्न के नायक (शिक्षक) ने व्याकरण शिक्षण हेतु खेल विधि का जो स्वरूप प्रस्तुत किया वह निम्न क्रम में था :

1. गत्ते के टुकड़ों पर एक ओर स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के उदाहरण शब्द लिखे गये। शब्दों के ऊपर स्त्रीलिंग व पुल्लिंग भी लिखा गया। ये सभी पुट्टे (टुकड़े) छात्रों को एक-एक कर पढ़ने को दिया गया। छात्रों ने उसे उत्साह के साथ पढ़ा।
2. शिक्षक ने खेल-खेल में छात्रों से पूछा-बोलो बैल की स्त्री कौन? छात्रों ने कहा गाय, सिंह की? सिंहनी। लड़के की? लड़की। बुड्ढे की? बुढ़िया। कुत्ते की? कुतिया। मोर की? मोरनी। छात्रों ने खेल-खेल में विभिन्न लिंग के शब्द जाने।
3. शिक्षक ने पुन: खेल प्रारम्भ करते हुए स्वयं पुल्लिंग लिखा। छात्रों ने उनके स्त्रीलिंग लिखे।
4. जांचने पर भूले बहुत कम निकलीं।
5. इसी प्रकार की अन्य क्रियाएं भी की गयीं। एक पेटी में स्त्रीलिंग शब्द लिखकर रखे गये, दूसरे में पुल्लिंग। छात्र हंसी खेल के साथ एक पेटी से स्त्रीलिंग शब्द निकालते दूसरे से उसका पुल्लिंग ढूढ़ते ।

हम देखते हैं, इस प्रक्रिया में न तो कोई अनुशासनहीनता हुयी और न ही कोई डांट-डपट। खेल-खेल में सीखी गयी यह जानकारी स्थाई और स्पष्ट थी। यहां कोई दुविधा कोई संशय न था।

बधेका इसी प्रकार की अन्य अनेक विधियों द्वारा छात्रों को व्याकरण आदि नीरस विषयों को सहजता से पढ़ाने की वकालत करते हैं। उन्होंने अन्य विषयों में भी इस प्रकार की क्रियाओं द्वारा सीखने पर बल दिया।

(III) क्रिया द्वारा सीखना

गिजुभाई ने अनुभव द्वारा सीखने की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण माना था। वह दैनिक जीवन के नीति-नियमों के अभ्यास से लेकर विद्यालयी पाठ्यक्रम की जटिल से जटिल विषय वस्तु को इस विधि द्वारा सिखाने को उपयुक्त मानते थे। उनका मानना था कि बच्चों को क्रिया करके सीखने का अवसर प्रदान किया जाए। गिजुभाई की साधना स्थली 'दक्षिणमूर्ति बालमंदिर' में बच्चे हँसते खिलखिलाते और दिन भर अपनी पसन्द की गतिविधियों में तल्लीन रह कर जीवनरक्षा के उपयोगी पाठ पढ़ते थे। दिन भर पढ़ने के बाद भी उन पर थकान के अंश न होते थे। उनका मानना था कि विकास की आधारशिला

है अनुभव, अनुभव स्वतन्त्र क्रिया में निहित है और स्वतन्त्र क्रिया बाहरी अवरोध में एवं भीतर के यथेष्ठ अनवरत प्रतिहत आविष्कार में निहित है। वह छात्रों के शिक्षण का आधार इन स्वतन्त्र क्रियाओं को बना देना उपयुक्त मानते थे। आप उन्हें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने को प्रोत्साहित करें, क्रियाओं से प्राप्त अनुभव द्वारा वे सीखते जाएंगे। यहां किसी प्रकार का दबाव नहीं।

गिजुभाई श्रुतिलेख के लिए बालको के लिखे गये शब्दों में काटपीट करने के स्थान पर उन्हें निरन्तर अभ्यास करने को प्रोत्साहित करते हैं। साथी से अपने अक्षर की तुलना का अवसर देते हैं और छात्रों को प्रोत्साहित करते हैं कि वे अपने लेख की त्रुटियां खोजें। इस प्रक्रिया द्वारा छात्र स्वयं कार्य व अभ्यास करते हुए सुन्दर लेख लिखना सीख जाता है। चित्रकला शिक्षण में वह बच्चों को वस्तुओं के काम या वस्तु देकर उनकी आकृति बनाने को कहते हैं। यहां भी वह निरन्तर क्रिया व अभ्यास को प्रमुखता देते हैं। गणित, भाषा तथा भूगोल आदि के शिक्षण में भी करके सीखने पर उन्होंने बल दिया।

बाल मन्दिर में प्रारम्भिक स्तर पर करके सीखने की पद्धति से होने वाले इन्द्रिय विकास के परिणामों का उदाहरण देते हुए वह लिखते हैं– ''बाल मन्दिर में भर्ती होने वाला नया बालक बड़े और छोटे पदार्थों के बीच के भेद को पहचान नहीं पाता। उस समय उसको लम्बाई और छोटाई का, मोटाई और चौड़ाई का शायद ही कोई ख्याल रहता हो। उसकी स्पर्श की इन्द्रियों की चिकने और खुरदरे के बीच का फर्क समझ में नहीं आता। रंगो की पहचान तो उसे होती ही नहीं। आकारों के बारे में वह बहुत ही कम जानता-समझता है। उसके चारों ओर रूप रंग से भरी सारी दुनिया फैली है। लेकिन उसको उसमें कुछ दिखता नहीं। इन सब में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं होती। किन्तु जब उसकी इन्द्रियों का विकास हो जाता है, तो वह अपनी सधी हुयी आंखों से सृष्टि की सुन्दरता को सधे हुए कानों से संगीत की मधुरता को, और सधे हुए स्पर्श से भांति-भांति की वस्तुओं की सतहों के लालित्य का अनुभव कर सकता है। वह अपने इस आन्नद में डूबा रहता है। बालक के जीवन की जो दिशा अब तक बन्द पड़ी थी, वह खुल जाती है और उसका जीवन-सुख आसमान से लेकर पाताल तक विशाल बन जाता है।

(IV) घेरलू क्रियाओं में निहित शैक्षिक प्रावधान

गिजुभाई ने घरों में बच्चों की विभिन्न खेलकूद की क्रियाओं के शैक्षिक महत्व की ओर

भी हमारा ध्यान आकर्शित किया। इस सन्दर्भ ने उन्होनें बच्चों के विभिन्न खेल-कूद के शैक्षिक महत्व बताए। इनमें से प्रमुख निम्नवत् है:

(1) कागज और कैची : घरों में बच्चे प्राय: पेपर आदि काटने का काम रुचि पूर्वक करते हैं। बधेका उनकी इस रुचि को उनकी शिक्षा से जोड़ने में नहीं हिचकते और बताते हैं कि आप उसे कैची, गोंद, कटोरी, दातौन या दूसरा कोई ब्रश, कागज और पत्रिकाएं उपलब्ध करा दें। हां कचरा डालने का डब्बा और हाथ साफ करने का कपड़ा भी उसे अवश्य दें। बालकों को स्वतंत्रता दें कि वह बेकार अखवार व पत्रिकाओं से चित्र आदि काट कर सूचनाएं एकत्रित करे। उनके इस संग्रह को पूरा होकर कोई आकार प्राप्त कर लेने पर जिल्द में बंधवा दें। बच्चा इस पूरी प्रक्रिया में कई नवीन सूचनाएं ग्रहण कर लेगा, अनुशासन व साफ-सफाई से काम करने की कला का भी उसमें विकास हो सकेगा।

(2) दियासलाई की डिब्बिया : गिजुभाई ने बताया कि दियासलाई की डिब्बियों से खेलना बच्चों का प्रिय खेल है। उन्होंने उनके इस खेल को भी उनकी शिक्षा से जोड़ने की विधि बताई। उन्होनें कहा कि दियासलाई की डिब्बियां रखने के लिए बच्चों को एक छोटी सी पेटी दे दीजिए और बैठकर बंगले आदि बनाने के लिए एक आसन भी दें। आप देखेंगे कि इन साधनों के प्रयोग में बालक बराबर लगा रहेगा। छोटा बालक भरी हुयी डिब्बियों से दियासलाइयां निकालेगा, उन्हें फिर भरेगा। उन्हे इस कार्य से अच्छा शिक्षण प्राप्त होगा। इससे आखें स्थिर होंगी, हाथ पर काबू आएगा और सबसे बड़ी चीज एकाग्रता पुष्ट होगी। बच्चों को एकाग्र करने के कार्य में प्राय: शिक्षक तथा माता पिता क्या-क्या नहीं करते। गिजुभाई इसे बड़ी सहजता से घरेलू खेल-कूद की क्रियाओं से प्राप्त करने का मार्ग हमें बताते हैं।

(3) लकड़ी की ईंटें और घन : गिजुभाई इन साधनों को बालक की रचनात्मकता से जोड़ते हैं। उन्होनें बताया बालक को ईंटों और घनों की एक-एक पेटी के साथ बैठने के लिए एक दरी या चटाई दीजिए। बालक इनसे तरह-तरह की आकृतियां बनाएगा। कलात्मक सृजन के लिए यह काम सुन्दर और उपकारक है।

(4) चित्र देखना और बनाना : गिजुभाई ने बताया कि बालको को लम्बे समय तक व्यस्त रखने वाले कामों में चित्र देखने और चित्र बनाने के काम महत्व के हैं। उन्होंने बताया कि चित्र देखना एक आनन्ददायक और विकासक काम है, उसी तरह चित्र

बनाना भी वैसे ही काम है। बालक भी चित्र बना सकते हैं, लेकिन वे चित्र उनके अपने हिसाब के चित्र होंगे, बड़े चित्रकारों के हिसाब के हर्गिज नहीं। लेकिन बच्चों के बनाए ये चित्र यदि उनको व्यस्त रखते हैं, उनको आनन्द देते हैं, उनको एक कदम आगे बढ़ाते हैं तो वे उनकी बहुत बहुमूल्य कृतियां ही हैं। अपने विकास की कक्षा में रह कर मनुष्य जैसा भी सृजन करता है, उसके लिये वही उसका अद्‌भूत भव्य, सम्पूर्ण और सुन्दर सृजन होता है। इस दृष्टि से बालकों द्वारा खीची गयी लकीरे भी चित्र हैं। दो टेंढ़ी-तिरछी लकीरों और कुछ बिन्दुओं की मदद से बालकों द्वारा बनाए गये कौए और गाय के चित्र भी चित्र ही हैं।

इस सन्दर्भ में उन्होंने निर्देश दिया कि बालकों को चित्र बनाने की सामग्री सौंप दीजिए। वे जैसे भी चित्र बनाएं उन्हें बनाने दीजिए।

(5) मिट्‌टी के खिलौने : गिजुभाई ने बताया कि मिट्‌टी का काम एक सृजनात्मक काम है। इस काम के कारण हाथों के स्नायु विशेष रूप से विकसित होते हैं। हमको पता चलता रहता है कि बालक के अवलोकन के विषय क्या-क्या हैं। अपनी कृतियों और अपने खेलों के माध्यम से बालक अपनी मनोवृत्तियों को प्रकट करते रहते हैं। गिजुभाई का मानना था कि हमें बालकों को मिट्‌टी के खिलौने बनाने की अनुभूति देनी चाहिए। जो लोग पैसे खर्च कर सकते हैं, वे इस काम के लिए क्ले और प्लेस्टिसिन नामक मिट्‌टी भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

(6) बागवानी : गिजुभाई ने बागवानी से मिलने वाले आन्नद व उत्तरदायित्व के भाव को महत्वूपर्ण माना और इन्हें छोटे बच्चों से कराने को उपयुक्त माना। उन्होनें बताया कि बच्चों का बोया हुआ एक भी बीज जब उगेगा तो वह उनके लिए उत्सव के समान होगा। बागवानी का काम उनमें प्रकृति प्रेम की भावना तो विकसित करेगा ही, बच्चे इस कार्य द्वारा छोटे-छोटे कार्यों को गंम्भीरता से करना सीख सकेंगे। इससे उनमें उत्तरदायित्व की भावना का भी विकास हो सकेगा।

(7) रेत का ढेर : हम प्राय: देखते हैं कि बच्चे हाथ में पकड़ कर फिसल जाने वाली चीजों के प्रति बड़े उत्साही होते हैं। गिजुभाई उनकी इस पसन्द को 'रेत के ढेर के साथ खेल' से जोड़ देते हैं और कहते हैं ''आंगन के सामने रेत के ढेर का मतलब होता है, बालको के लिए तरह-तरह के कामों का एक जीता-जागता केन्द्र। बालकों को इस ढेर के

पास पहुंचाने दीजिए। वहां उनको उनकी रुचि के अनुसार कुएं, बगीचे, रास्ते, किले पहाड़ आदि बनाने दीजिए।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि गिजुभाई ने बालकों की अनेक दैनिक क्रियाओं व व्यवहारिक क्रिया-कलाप में उनकी शिक्षा के माध्यम ढूढ़ निकाले और तमाम ऐसे कार्यों की सार्थकता हमें बताई, जिन्हें अभिभावक तथा शिक्षक प्राय: निरर्थक तथा समय की बरबादी मानते रहे हैं। गिजुभाई ने स्वानुभव द्वारा सीखने की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण माना था। ये क्रियाएं बड़े प्रभावी रूप में बच्चों को विविध अनुभव प्रदान करती हैं और बालक सीखता जाता है। इन क्रियाओं की महत्ता को स्पष्ट करते हुए गिजुभाई ने कहा था ''बालकों के लिए तो ये काम भी खेल स्वरूप ही हैं, पर असल में ये खेल है नहीं। खेल में कुछ करना होता है। कोई क्रिया होती है, जैसे लुका-छिपी के खेल में दौड़ना होता है। लेकिन दौड़ना उनका उद्देश्य नहीं होता। उद्देश्य होता है हाथ न आना या पकड़ा न जाना। इस तरह खेल में क्रिया समाई रहती है। पेड़ को पानी पिलाना एक क्रिया है। इसका हेतु है अमुक एक क्रिया करना, जैसे पेड़ को पानी पिलाना। यहां क्रिया और हेतु, दोनों एक है।

इन प्रमुख विधियों के साथ-साथ गिजुभाई ने प्रश्नोत्तर पद्धति, व्याख्यान पद्धति नाट्य प्रयोग पद्धति, किन्डर गार्डन पद्धति आदि के भी प्रयोग अवश्यकतानुसार किये जाने पर बल दिया। बच्चों की शिक्षा हेतु वह उनके स्वाभाविक वातावरण के प्रति सजग दिखे। यही कारण है कि उन्होंने काव्य शिक्षण हेतु लोकगीतों का आश्रय लेना उचित समझा। कविता की पंक्तियों के विश्लेषण तथा उनके शब्दों के अर्थ समझाए, बताए जाने के स्थान पर उन्होंने इसके काम को आत्मासात किये जाने पर अधिक जोर दिया और बताया कि कविता का परिचय गाकर ही कराया जाए। उसे बताया जाना जरूरी नहीं है। गणित शिक्षण हेतु मान्टेसरी पद्धति को उचित मानते हुए यहां भी उन्होंने खेल व क्रियाओं को प्रमुखता दी। भूगोल शिक्षण में तथ्यों को रटा दिये जाने के स्थान पर उन्होंने ग्लोब व नक्शों आदि का आश्रय देकर तथ्यों से अवगत कराये जाने पर जोर दिया। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य बालक का स्वांगीण विकास करना है। अत: नये-नये पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रम अपनाए जाते रहने चाहिए। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन बच्चों के इन्द्रिय विकास के खेल ईजाद करने, शान्ति की क्रीड़ा, शैक्षिक भ्रमण, हाथ के कार्य, संगीत, नाटक, रचनात्मक कार्यों, बाल संग्रहालय कथा कहानी द्वारा शिक्षण आदि

विभिन्न प्रवृत्तियों के आयोजन में बिताया था। हमें उनके इन अनुसंधानों को अपनी वर्तमान शिक्षा पद्धति में स्थान देकर जीवित रखने का प्रयास करना चाहिए।

शिक्षक, शिक्षार्थी तथा अनुशासन

गिजुभाई के साहित्य तथा बालमन्दिर में किये गये उनके प्रयोगों में शिक्षक शिक्षार्थी व विद्यालयी अनुशासन एक दूसरे से सह सम्बन्धित दिखाई देते हैं। यह ठीक है कि शिक्षार्थी को अनुशासित होना है तथा शिक्षक को उन्हें अनुशासित बनाने का कार्य करना है। किन्तु यह कार्य रोज-रोज की डांट-डपट व दण्ड से कम ही सम्भव है। यहां शिक्षक का व्यवहार उसकी बोली भाषा सभी कुछ काम आएगा किन्तु दण्ड नहीं। वह दण्डात्मक अनुशासन के प्रबल विरोधी थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने बाल मन्दिर में स्वानुशासन पर अधिक जोर दिया था। बाल मन्दिर के शिक्षकों को यह निर्देश दिया गया था कि वे बच्चों को न तो डाँटें, न झिड़कें और न ही उन्हें शारीरिक दण्ड दें। उन्हें अपनी बात कहने एवं कार्य करने की स्वतंत्रता पर अंकुश न लगाएं। बाल मन्दिर में शिक्षक की भूमिका एक पुजारी के समान है। गिजुभाई ने बाल मन्दिर में बच्चों को देवता तथा शिक्षक को पुजारी माना था। अतः यहां आवष्यक था कि शिक्षक प्रेम, स्नेह, त्याग, परोपकार एवं कर्तव्य परायणता की भावना से परिपूर्ण हो तभी वह बच्चों की सेवा कर सकेगा। एक शिक्षक के लिए उन्होंने इस बात को भी जरूरी माना कि उसे बाल मनोविज्ञान का यथोचित ज्ञान अवश्य हो। वह चाहते थे कि शिक्षक समर्पण की भावना से कार्य करे। वह पैसे का लोभ न करते हुए स्वयं को बच्चों का भविष्य निर्माता समझे।

हम देखते हैं कि आदर्श शिक्षक के सानिध्य में पलने-बढ़ने वाला बालक स्वतः अनुशासित होगा। इसके लिए किसी अन्य प्रयासों की आवश्यकता न होगी। आप बालक के आस-पास का वातावरण स्वाभाविक, प्राकृतिक व स्वतन्त्र रखें। वह स्वाभाविक रूप में विकसित होगा।

उन्होंने कहा था, वही काम सच्चा माना जाए जो बालक को व्यस्त रखे, प्रसन्न रखे, एकाग्र रखे, जिसको करते-करते बालक हँसे, गाए और दूसरों को उसमें सम्मिलित करना चाहे।

विद्यालय

गिजुभाई के बाल मन्दिर की अवधारणा में मॉटेसरी के बालघर (Children Home) की

झलक देखने को मिलती है। हाँ, यहां के वातावरण तथा शिक्षक के विचारों में भारतीय दर्शन में निहित आध्यात्म की छाप सर्वोपरि है। ध्येय तथा पद्धति कुछ भिन्न हैं। उन्होंने विद्यालयों को मन्दिर की संज्ञा दी जिसमें बालक ही देवता है और शिक्षक को बाल देवोमय की भवना के साथ बालक के साथ कार्य करना है। उसे बालकों को सिखाने के लिए दण्ड देने की आवश्यकता नहीं है। उनका मानना था कि प्रेमभाव से परिपूर्ण वातावरण में अध्ययन अध्यापन अधिक सहज है। अत: उन्होने इस बात पर बड़ा जोर दिया कि विद्यालयों में आपसी सहयोग एक दूसरे के प्रति प्रेम, आस्था व सामूहिक क्रियाओं को प्रमुखता दी जाए।

गिजुभाई ने बच्चों में अपने इष्टदेव के दर्शन कर स्वयं को धन्य माना था। वह बच्चों के सुख में सुखी व दुख में दुखी हो जाया करते थे। प्रत्येक शिक्षक में इस प्रकार के भाव को उन्होंने महत्वपूर्ण माना था। दक्षिणमूर्ति बाल मन्दिर में विभिन्न विषयों के शिक्षण के साथ-साथ विभिन्न सह-शैक्षिक प्रवृत्तियों तथा चरित्र निर्माण पर बहुत जोर दिया जाता था, सत्य, अंहिसा, करुणा, स्नेह, आदर, दया, त्याग, परोपकार, भाईचारा, ईमानदारी, परिश्रम तथा सहयोग जैसे उत्तम मानवीय गुण बच्चों में स्वत: विकसित होते थे। उन्होने बच्चों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास हेतु बालकों को स्वतन्त्र रूप से विकसित होने देने की वकालत की थी।

यहाँ उन्होंने बाल मन्दिर का उदाहरण भी दिया। उन्होंने बताया बालक के बाल मन्दिर में भर्ती होने के बाद हम तुरन्त ही उसकी देख रेख शुरू कर देते हैं। सबसे पहले बालक की गंदी बेढंगी और असामाजिक आदतों को सुधारने का काम हाथ में लिया जाता है। कुछ ही समय में बालक खुद यह समझने लगता है कि वह कितना गंदा रहा करता था और उसके कपड़ों का क्या हाल था। धीरे- धीरे वह अच्छी तरह चलने, उठने, बैठने, धीमी आवाज में बात करने, बिछाने, झाड़ू लगाने, परोसने, चीजों को अच्छी तरह रखने, अपने कपड़ों में बटन लगाने-खोलने, जूतों के फीते बांधने और खोलने तथा पानी पीने जैसे काम करने लगता है। बाल मन्दिर में नए भर्ती हुए बालक को और कुछ दिन पहले भर्ती हुए बालक को देखने से साफ ही पता चल जाता है कि दोनों के बीच कितना फर्क है। बाल मन्दिर में भर्ती हुआ नया बालक कुछ समय बीतने पर बाल मन्दिर के वातावरण में रहकर दूसरे बालकों के साथ घुलना-मिलना, इकट्ठा होकर साथ में काम करना और अपने कारण दूसरों को कष्ट न पहुचाते हुए अपना काम करना सीख जाता

है। कुछ ही समय में उसका मिजाजी स्वभाव बदल जाता है। चीखने-चिल्लाने और उधम मचाने के बदले बहुत कुछ शान्त और स्वस्थ बन जाता है। जो अपने आप को जानता ही न था, वह अब अपने को जानने पहचानने लगता है। जो दूसरों के भरोसे बैठा रहता था सोचा करता था, वह अब अपना काम खुद कर लेता है और मस्त रहता है। जो एक कोने में अकेला बैठा रहता था, वह अब कइयों का मित्र बन जाता है। यही नहीं, वह धीमे-धीमे घर और बाल मन्दिर के बीच के फर्क को भी समझने लगता है। बाल मन्दिर के सामाजिक वातावरण का इतना प्रभाव उस पर पड़ता है।

बाल मन्दिर में गिजुभाई द्वारा किये गये प्रयोगों की सफलता से बाल मन्दिर की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। परिणामस्वरूप इसमें प्रवेश के लिये बच्चों की संख्या भी बढ़ गयी। इस सबसे प्रभावित होकर दूसरे लोग भी आगे आए और इसी आधार पर अन्य बाल मन्दिर भी खोले गये किन्तु ये लोग गिजुभाई के समान सफल न हुए। गिजुभाई ने इस स्थिति को देखकर शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का काम भी किया। उन्होंने इन शिक्षकों का व्यवहारिक मार्गदर्शन भी किया कि वे किस प्रकार बच्चों के साथ घुल मिल कर उनके विकास में सहायक हों। बच्चों के विषय में उन्होंने कहा था– ''बालक तो भगवान के घर से आए हुए हमारे छोटे-छोटे देव हैं। आप जानते हैं कि बालक को पाने के लिये हम हर पत्थर को भगवान मानकर उसकी पूजा करते हैं। बालक तो हमारे घरों के आभूषण हैं।'' उन्होंने बालकों को शारीरिक दण्ड दिये जाने का प्रबल विरोध किया और बताया ''अक्सर बालक को हठीला मानकर जब वह पढ़ने नहीं जाता, या जब वह कोई चीज बार-बार मांगता रहता है, तो गुस्से में आ कर हम उसको मार बैठते हैं। किन्तु हम यह नहीं समझते कि बालक भी अपनी मर्जी से, अपनी रुचि से कोई काम करना चाहता है। उसका अपना भी एक जीवन है, उसकी अपनी कुछ इच्छाएं होती हैं। ऐसा बालक मारने-पीटने से कभी नहीं सुधरता। फिर उपाय क्या है? किन पद्धतियों से किन उपायों से बालकों को अनुशासित किया जाए? इनका भी उपाय उन्होंने बताया। यहां उन्होंने बाल मन्दिर का उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया आप सोचेंगे कि बिना मारे-पीटे काम कैसे चलेगा? जो बालक बार-बार सिर पकाते रहें, हैरान और परेशान करते रहें, ऊधम मचाते रहें, उनको मारे पीटे बिना कैसे रहा जाए? लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि एक बार आप हमारे बाल मन्दिर में आकर देखिए। वहां हम बालकों को मारते-पीटते नहीं हैं। बाल मन्दिर में कोई पचास बालक और बालिकाएं हैं।

ये सब बालक हमारा कहा मानते हैं। वे बालक हमको कभी भूलते ही नहीं हैं। अपने घर जाने पर इनको वहां हमारे ही सपने आते हैं। इसके लिये हमारे पास कोई जादू नहीं है। कोई जन्तर मन्तर नही है। कोई इलम-विलम भी नहीं है। इसका कारण एक ही है और वह यह है कि हम इनको कभी मारते-पीटते नहीं हैं।

गिजुभाई के शिक्षक तथा शिक्षार्थी सम्बन्धी विचारों में हमें भारत के परम्परागत शैक्षिक व्यवस्थापन के अंश देखने को मिलते हैं। गिजुभाई ने शिक्षक के सन्दर्भ में भारत की परम्परागत विचारधारा, आदर्श शिक्षक की कल्पना को ज्यों का त्यों स्वीकार किया। विद्यार्थी के साथ उसके सम्बन्ध के विषय में भी उनकी अवधारणा में इसी विश्वास के अंश देखने को मिलते हैं। भारत के प्राचीन गुरूकुलों में गुरू के सानिध्य में पिता-पुत्र के प्रेमवत सम्बन्ध द्वारा बालक के विकास की स्थितियां गिजुभाई के बाल मन्दिरों में जीवन्त हो भारतीय आधुनिक शिक्षा के लिये मजबूत आधार निर्मित कर रही थी। अपने बाल मन्दिर में गिजुभाई ने जिस प्राकृतिक वातावरण पर जोर दिया उसके अंश भी हमें अपने प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में देखने को मिलते हैं। गिजुभाई इन आदर्श व्यवस्थाओं के साथ बाल मनोविज्ञान के आधुनिक सन्दर्भों को जोड़ते हुए बच्चों की शिक्षा की ऐसी सुगठित व्यवस्था हमारे सामने रखते हैं, जिसके द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। इस व्यवस्था में स्वानुशासित बालक स्वाभाविक रूप में अपना विकास कर सकेगा।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा

गिजुभाई का मानना था कि धर्म की गम्भीर बातें बच्चे समझ नहीं पाते। अत: इनका अध्ययन बाद में कराया जाए। हां, इसकी अनदेखी भी उचित नहीं है। प्रारम्भ में धार्मिक पुरुषों की जीवनी व कहानी के माध्यम से धार्मिक शिक्षा दी जाए। अत: उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना को भी स्वीकृत किया। उन्होंने इस बात पर विशेष ध्यान दिया कि बाल मन्दिर के शिक्षक नैतिक आचरण वाले तथा धार्मिक प्रवृत्ति के हों। उनके सानिध्य में बच्चों में धर्म के प्रति लगाव एवं नैतिकता का विकास सहज व स्वाभाविक रूप में होता था। उनका मानना था कि कर्मकाण्ड, श्लोक पाठ, धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन आदि को हम भविष्य के लिये छोड़ सकते हैं। किन्तु पुराण व उपनिषद की कथाएं बच्चों को खेल-खेल में अवश्य बताई जा सकती है।

धार्मिक शिक्षा के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है– 'बालकों को धार्मिक शिक्षा देने की

बात आप अपने मन से निकाल ही दीजिए। धर्म की बाते कहकर, धर्म के काम करवाकर, धर्म को रूढ़ियों की पोशाकें पहनाकर हम अपने बालकों को कभी भी धार्मिक नहीं बना सकते। बहुतेरे माता-पिता हमसे कहते हैं कि अपने बाल मन्दिर में हम बालकों को नीति का शिक्षण दें, तो अच्छा हो। कहने वालों का आशय यही रहता है कि हम बालकों को तोते की तरह नीति का शिक्षण दिया करें। वे चाहते हैं कि बालक धर्म की बातें करने लगें। बार-बार माता-पिता की आज्ञा को भगवान की आज्ञा मानकर उसको सिर-माथे चढ़ाता रहे। भला हम अपने बालकों को ऐसा शिक्षण कैसे दे सकते हैं? अगर हम यह मानें कि उपदेश से मूछें आ जाए, अंधा देखने लग जाएगा और लंगड़ा चलने लगेगा, तभी न हम बालकों को धर्म या नीति के उपदेश के द्वारा धार्मिक अथवा नीतिवान बनाने का प्रयत्न करेंगे? यह देखकर हमारे मन में खेद उत्पन्न होता है कि जिन माता-पिताओं के अपने जीवन में कोई ऐसी बात है ही नहीं कि जिसको देखकर बालक उनके चरण छूना चाहे, वे माता-पिता नीति की शिक्षा की मदद से अपना अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। आप खुद तो इस लोक से दूर ही रहिये। धर्म किसी पुस्तक में नहीं है। किसी उपदेश में नहीं है और न कर्मकाण्ड की किसी जड़ता में ही है। धर्म तो मनुष्य के जीवन में है। यदि आप अपने जीवन को पूरी तरह धार्मिक बनाए रखेंगे, तो समझिये कि अपने बालक की धार्मिक शिक्षा के लिये आपने वह सब किया है, जो आपको करना चाहिए।''

गिजुभाई ने बालकों के नैतिक विकास के लिये शुद्ध तथा प्रेरणादायी वातावरण को महत्वपूर्ण माना और बताया कि उपदेश मात्र देते रहने से बालक को नैतिक बनाना संभव नहीं है। इस विषय में उन्होंने कहा था हम बालकों को यह उपदेश न दें कि अमुक काम करना अच्छा है, और अमुक काम करना बुरा है। भलाई और बुराई को जानते-समझते हुए भी आदमी भले-बुरे काम करता ही रहता है, क्योंकि उसकी क्रिया शक्ति निर्बल होती है। उपदेश से बात तो समझ में आ जाती है, उस पर अमल करने की शक्ति नहीं आती। उपदेश के कारण उत्पन्न समझदारी से मन में भावना जगती है, अच्छा संकल्प करने की शक्ति प्रकट नहीं होती, क्योंकि संकल्प को कार्य में परिणित करने के लिये क्रिया-शक्ति के बल की आवश्यकता होती है। अत: उपदेश देने के बदले हम बालकों को काम करने के साधन दें, अच्छी सोहबत दें और अच्छा वातावरण दें। जब तक हाथों में काम है, जब तक मन में काम का चिन्तन है, जब तक सोहबत अच्छी है और जब तक वातावरण स्वच्छ और निर्मल है, तब तक बालक बुराईयों से सुरक्षित है।

परीक्षा

परीक्षा, शिक्षण प्रक्रिया का एक मजबूत आधार है। सिखाए गये पाठ तथा क्रियाओं को छात्र ने कहां तक आत्मसात किया है। वह एक निश्चित पाठ्यक्रम या शिक्षण सामग्री को ग्रहण कर नवीन सामग्री के अध्ययन के लिये किस हद तक तैयार है, इस बात का पता परीक्षा के माध्यम से ही हमें प्राप्त होता है। अत: किसी भी देश की शिक्षण व्यवस्था में परीक्षा अथवा मूल्यांकन की आवश्यकता से हम इनकार नहीं कर सकते। यहां प्रधान मुद्दा यह है कि परीक्षा की प्रकृति कैसी हो, उसका स्वरूप कैसा हो, एक शिक्षक अपने उद्देश्य से भटक जाता है जब वह विद्यार्थी को सिर्फ परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिये पढ़ाए। इस व्यवस्था में शिक्षण से प्राप्त सन्देश तथा पाठ्यक्रम में निहित विविध पाठों के भाव विद्यार्थी के अन्तर्मन तक न पहुच सकेंगे। यहां तो सब कुछ ऊपरी और दिखावा मात्र होगा। तथ्यों को रटकर यादकर लेना न तो शिक्षा का व्यापक रूप है और न ही इस रटी गयी सामग्री को परीक्षा में लिखकर पूरे अंक प्राप्त कर पाई गयी उपलब्धि वास्तविक उपलब्धि है।

गिजुभाई का मानना था कि हम बच्चे को पढ़ाने का उद्देश्य परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना ही न रखें। हम शिक्षा के द्वारा प्राप्त की गयी जानकारी की व्यवहारिक उपयोगिता से भी बच्चे को अवगत कराएं। और इस क्रमिक प्रक्रिया द्वारा बालक को उत्तम व्यक्तित्व का स्वामी बनाएं। 'दिवास्वप्न' के नायक (शिक्षक) के माध्यम से परीक्षा की आवश्यकता के विषय में वह कहते हैं, ''जब तक चाहें जो विद्यार्थी पढ़ता है और चाहें जो शिक्षक पढ़ाता है, तब तक परीक्षा की आवश्यकता भी रहेगी। परीक्षा हटाई तो तभी जा सकती है, जब विद्यार्थी दिल की उमंग के वश होकर पढ़ने आए और पढ़ाने में कुशल, कलाकार, शिक्षक पढ़ाने की उमंग से पढ़ाने बैठे। लेकिन आजकल की इस 'भड़ैती' स्थिति में तो परीक्षा के प्रवेश की पूरी गुंजाइश है।''

वर्तमान व्यवस्था में हम देखते हैं कि परीक्षा विद्यार्थियों के लिये एक ऐसा हौवा है, एक ऐसा भय है जो उन पर गहरा मानसिक दबाव बनाता है। बधेका परीक्षा के द्वारा बालकों पर पड़ने वाले इस मनोवैज्ञानिक दबाव को उचित नहीं मानते थे। उनका मानना था कि परीक्षा का स्वरूप व उसका व्यवस्थापन कुछ इस प्रकार का हो जिससे वह बालक को रोजमर्रा के शैक्षिक कार्यक्रम का एक हिस्सा प्रतीत हो। इसके लिये उन्होंने आंशिक परीक्षाओं के चलन पर जोर दिये जाने का प्रस्ताव रखा और कहा, ' आप केवल

छमाही और सलाना परीक्षा लेते हैं, इसके बदले मासिक परीक्षा लेना शुरू कीजिए। यदि विद्यार्थी के लिये परीक्षा की कसौटी पर कसा जाना आवश्यक ही है, तो परीक्षा का जितना विशेष परिचय उसको होगा, उसका त्रास उतना ही घटेगा। अति परिचय से त्रास भी सह्य बन जाता है।'' बधेका की दृष्टि में प्रत्येक माह परीक्षा की प्रक्रिया के गुजरते हुए बालक इन परीक्षाओं को सामान्य रूप में लेने लगेगा और किसी प्रकार के मानसिक दबाव का अनुभव नहीं करेगा। यहां वह परीक्षा के उद्देश्य की भी समीक्षा करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि परीक्षा होशियार विद्यार्थियों की प्रगति को मापने के लिये नहीं, बल्कि कच्चे और कमजोर विद्यार्थियों को जगाने के लिये उनकी कमजोरी का ठीक पता लगाने के लिये ली जाए।'' नि:सन्देह परीक्षा प्रक्रिया में निहित यह भाव, असफल विद्यार्थी को जहां हीन भावना से बचाएगा वहीं होशियार बच्चों को गुरूर की भावना से ग्रसित हो दूसरों को हीनता से देखने के भाव से भी बचा रख सकेगा। गिजुभाई का मानना था कि परीक्षा में प्रतिस्पर्धा का भाव समाहित कर देना छोटे बच्चों के कोमल मन के लिये ठीक नहीं है।

उन्होनें कहा भी था– ''अपने बालक को स्पर्धा के विषय से जरूर बचा लीजिए। दो बालकों के बीच होड़ या स्पर्धा खड़ी करके उनसे काम करवा लेने का तरीका एक हल्का तरीका है। हम बच्चों से रोज ही कहते हैं, आओ देखें पहले कौन दौड़ता है? पहले कौन घूमता है? कौन पहले पानी लाता है? इस तरीके से हमारा काम तो हो जाता है लेकिन बालक की आदत बिगड़ जाती है। जब जब उसको होड़ में उतरने का मौका मिलता है, तब तब वह दूसरों को हराकर, मारकर, दूसरों की कब्र पर चलकर खुद जीत का सुख लूटने की कोशिश करता है।'' सही रूप में देखा जाए तो यह भावनाएं बच्चों के लिये उचित नहीं हैं।

बेहतर तो यही होगा कि बच्चा अपनी रोजमर्रा की शैक्षिक गतिविधियों से जो सीखे उसे प्रसन्नतापूर्वक बगैर किसी होड़, बगैर किसी मानसिक दबाव के शिक्षक के समक्ष प्रस्तुत करे और शिक्षक उनमें पाई गयी कमियों की जांच पड़ताल कर उन तथ्यों को पुन: सिखाने का प्रयास करे जो बालक न सीख सका है। उत्तम प्रदर्शन पर वह उसे नवीन सामग्री सीखने को तत्पर करे। इस पूरी प्रक्रिया में तथ्यों तथा पाठ के सार को आत्मसात करना प्रमुख है न कि तथ्यों को याद कर लिख देना। रटन्त पद्धति पर आधारित हमारी परीक्षा व्यवस्था को गिजुभाई ने बच्चों के लिये उचित नहीं माना था।

उनका सुझाव था कि ''परीक्षा उन्हीं विषयों की ली जाए जो परीक्षा द्वारा जांचे जा सकते हैं। बाकी विषयों को परीक्षा से मुक्त रखा जाए। परीक्षा के समय विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तकें देखकर उत्तर देने की स्वतंत्रता भी दे दी जाए। हम उनसे कह दें कि जो चीज याद न हो उसको पुस्तक में देख लो और फिर जवाब दो। जो जबानी कह न सकें किताब में देखकर समझाएं। जबाब देते समय विद्यार्थी पाठ्यपुस्तकों का कैसा प्रयोग करता है इसी में तो उसकी परीक्षा है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि गिजुभाई ने अपने खुद के प्रयोगों से छोटे बच्चों के लिये बाल मन्दिर नाम से एक ऐसे संसार की रचना की जहां सब कुछ उनके जैसा था। यहां सब कुछ एक छोटे बच्चों को प्रसन्न रखने, उनके स्वाभाविक व सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित था। हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति की सबसे बड़ी कमी उसकी कार्य पद्धति में स्वभाविकता की कमी है। हम प्राय: जिस माहौल में शिक्षण का कार्य करते हैं वहां सीखने-सिखाने की जल्दबाजी में अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं की अनदेखी कर देते हैं। पाठ को पढ़ना उसके कठिन शब्दों को याद करना, दिये गये प्रश्नों के उत्तर लिखना व उन उत्तरों को ठीक ठीक रट कर परीक्षा में लिख देना, इस पूरी प्रक्रिया में देखें स्वाभाविकता कहां है? कृत्रिम? वातावरण की कृत्रिमता? से उद्वेलित छात्र अनुशासनहीन हो उठता है और शिक्षक उसे कोसने से बाज नहीं आता। गिजुभाई बताते हैं कि आप छात्रों से उनकी स्वाभाविकता न छीनें, अपनी खुद की गति के साथ दौड़ने पर उसके गिर जाने का खतरा कम होगा और धीरे-धीरे परिपक्वता आने के साथ वह तेजी से दौड़ना भी सीख जाएगा।

कठिन से कठिन विषय के लिये भी गिजुभाई जिस व्यवहारिक व स्वाभाविक शिक्षणविधियों की वकालत करते हैं वह उनके सृजनात्मक अन्तर्मन की अमूल्य धरोहर है। उन्हें अपने विद्यालयों में स्थान देकर हम छोटे बच्चों को अनेक जटिलताओं से बचा सकते हैं। उन्होंने शिक्षा को बाल केन्द्रित, स्वाभाविक व व्यवहारिक प्रक्रिया माना है। उन्होंने शिक्षा में व्यक्तिगत भिन्नता के मंतव्य पर बल दिया और इस बात पर जोर दिया कि बालकों के मानसिक विकास को समझने तथा बच्चों के अनुभवों को नियोजित कर शिक्षा देने का प्रयास किया जाए। वे शिक्षण को रोचक बनाने व बच्चों के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार के प्रति सदैव सजग दिखे। बच्चे को पर्याप्त स्वतंत्रता देते हुए उनकी जिज्ञासा से प्रस्फुटित होकर सीखे गये तथ्यों को वह वास्तविक शिक्षा मानते थे। हमें अवश्य ही उनके दिशा निर्देश को अपनी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में समायोजित कर

किताब के बोझ तले दबे अपने बच्चों के कोमल मन के साथ उचित न्याय करना चाहिए। उन्हें उनके विकास के स्वाभाविक अवसर उपलब्ध कराने चाहिए।

संदर्भ

बधेका, गिजुभाई (2000) शिक्षा के विधिक आयाम 'दिवास्वप्न', संस्कृति साहित्य, दिल्ली पृ. 13

बधेका, गिजुभाई (2001)– मातापिता से गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ. 49–50

बधेका, गिजुभाई (2000) 'दिवास्वप्न, पूर्व संदर्भित पृ. 48–49

बधेका, गिजुभाई (2009) दिवास्वप्न पूर्व संदर्भित पृ. 60, 84)

बधेका, गिजुभाई (2001) माता पिता से पूर्व संदर्भित पृ. 34, 43, 44, 49, 50, 58, 59

टण्डन, उमा, गुप्ता अरूणा (2008), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 253